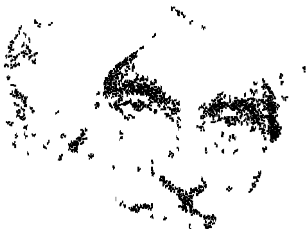




महाकवि ब्रजेश

डॉ. कृष्णचन्द्र वर्मा
पूर्व प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
एवं अधिष्ठाता, कला-संकाय, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर

संयोजन
डॉ. पन्नालाल एम.ए., पी-एच डी



मनस्वी प्रकाशन

महाकवि ब्रजेश
संपादक : डॉ. कृष्णचन्द्र वर्मा

सयोजन
डॉ. पन्नालाल

पहला संस्करण : २०००

मूल्य : २००.०० रुपए

प्रकाशक :
मनस्वी प्रकाशन
एम-८, कृष्णदीप काम्प्लेक्स
महारानी रोड, इन्दौर-४५२ ००७

मुद्रक ·
प्रिन्टवेल
अम्बेडकर नगर, इन्दौर

आवरण : मनस्वी ग्राफिक्स

Mahakavı Brijesh
-Dr Knshanchandra Verma

Publıshed by
MANASVI PRAKASHAN
M-8, Knshnadeep Complex,
Maharanı Road, Indore - 452 007

First Edition 2000
Pnce · Rs 200/-

दो शब्द

हिन्दी साहित्य के मध्यकालीन विशेषत: रीतिकालीन साहित्य के पठन-पाठन की प्रक्रिया अब प्राय: क्षीण होती जा रही है। इस काल को महाविद्यालयो मे अध्ययन और अध्यापन करने-कराने वालों की सख्या समाप्तप्राय है। कुछ ही गिने चुने मर्मज्ञ है जिन्होने इस काल को आधुनिक काल के आतंक से बचा रखा है। हिन्दी साहित्य के प्राचीन काव्य के सिद्धहस्त एव प्रसिद्ध आलोचक डॉ.कृष्णचन्द्र वर्मा ने लगभग समाप्तप्राय रीति कवियो की परिपाटी में से आधुनिक युगीन महाकवि आचार्य ब्रजेश के कठिन श्रम को उद्घाटित करने का सराहनीय प्रयास किया है। रीतिकालीन कवियो की काव्य-कुशलता, शास्त्रप्रियता एव आचार्यत्व को बिना समझे कोई अपने को विद्वान माने तो माना करे परन्तु उसे विद्वन्मडली की श्रेणी मे रखा जाना संकोच की भावना जागृत करती है। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल मे लुप्तप्राय रीतिकालीन ब्रज-परम्परा के अल्पज्ञात कवि आचार्य को प्रकाश में लाने और हिन्दी साहित्य के सरस एव रसज्ञ पाठक वृन्द के समक्ष रखने मे डॉ. वर्मा का यह प्रयास निश्चय ही अप्रतिम है। ब्रजभाषा की मिठास, शब्दों की कोमलता एव मनोभावो को उद्घाटित करने की क्षमता, पदलालित्य का मनमोहक आकर्षण सब कुछ तो इसमें विद्यमान है।

प्रस्तुत पुस्तक न केवल महाकवि ब्रजेश के सम्बंध में विद्वतापूर्ण जानकारी उपलब्ध कराती है बल्कि ब्रजभाषा की क्षमता को उद्घाटित भी करती है और यही कारण है कि आज भी ब्रजभाषा मे काव्य-सृजन की परम्परा डॉ. जगदीश गुप्त जैसे आधुनिक कवियो में भी जीवित दिखाई देती है।

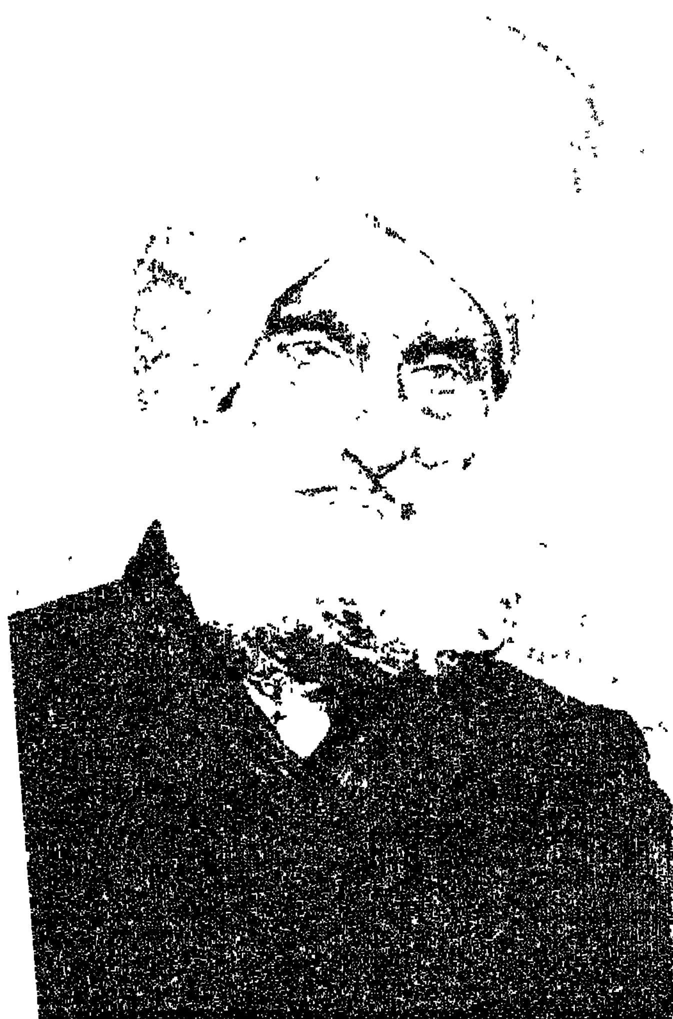
आशा है हिन्दी साहित्य प्रेमियों के लिए यह प्रयास श्लाघनीय एवं संग्रहणीय प्रमाणित होगा।

प्रस्तुत पुस्तक लम्बी अवधि तक डॉ. कृष्णचन्द्र वर्मा के पास अप्रकाशित पडी रही, परन्तु आचार्य गुरुवर डॉ किशोरीलाल (इलाहाबाद) तथा प्रोफेसर डॉ. विनय दुबे (भोपाल) के आदेश पर इसके संयोजन की ज़िम्मेदारी मैने अपने ऊपर ले ली। पुस्तक की महत्ता के सम्बंध में तो पूछना हो नहीं था।

इस पुस्तक के प्रकाशन मे **परसरामपुरिया हाउस के सहज सहयोग एवं सौजन्य तथा हिंदी प्रेम को विस्मृत नहीं किया जा सकता।** हिन्दी साहित्य उनका ऋणी रहेगा।

मेरे मित्र श्री मुरली मोहन ने अपने **मनस्वी प्रकाशन** से इसे प्रकाशित कर सभी को ऋणी किया है।

-डॉ.पन्नालाल



महाकवि ब्रजेश

प्राक्कथन

'महाकवि ब्रजेश' ग्रथ की रचना लगभग ३४ वर्ष पहले ही सपन्न हो चुकी थी। ब्रजेश जी को मैंने १९५० से ५७ के बीच रीवा मे अनेकानेक बार देखा और सुना था। कई बार उनसे मिला भी था। १९५५ मे उनके ८४ वे जन्म दिन के अवसर पर एक लेख भी 'जागरण' पत्र मे प्रकाशित कराया था। उसके बाद भी समय-समय पर उनके और उनके साहित्य के विषय में कुछ कुछ लिखता रहता था। एक बार भारतीय हिन्दी परिषद् के प्रयाग अधिवेशन मे 'रीतिग्रथो के नए प्रणेता' शीर्षक से एक निबध वाचन भी किया था। डॉ.भगीरथ मिश्र उस निबंध से प्रभावित होकर मेरे पास आए और ब्रजेश जी तथा उनके रीतिग्रंथों के विषय में जानकारियाँ प्राप्त करने लगे। इसी विषय पर उन्होंने काम किया था लेकिन उन्हे ब्रजेश के रीतिग्रथो की जानकारी न थी। मैंने सारी जानकारियाँ उन्हे उपलब्ध करा दी जिनका उपयोग उन्होंने 'हिन्दी काव्यशास्त्र का विकास' नाम से प्रकाशित अपने प्रबन्ध के दूसरे सस्करण मे किया। एक बार ब्रजेश जी ब्रजभाषा के काव्याचार्य मेरे गुरुवर डॉ.रसाल के पास भी आए थे १९४९-५० के आस-पास। तब मै प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग मे स्नातकोत्तर छात्र था पर ब्रजेश जी को सही-सही तभी जान सका जब मै रीवा के दरबार कॉलेज मे हिन्दी का व्याख्याता बना। १९५० से ५९ तक मै वहाँ रहा। उस अवधि मे तो कम ही पर उसके बाद, बहुत कर के तब जब मै मह मे ३ और रायपुर म २ वर्ष रह कर हमीदिया कॉलेज भोपाल पहुँचा उस अवधि में मैंने ब्रजेश के काव्य पर विस्तार से विचार किया। यह बात १९६५ की है। उनके 'रस-रसाग-निर्णय' शीर्षक ग्रंथ पर मै रीवा मे रहते ही विस्तार से विचार कर चुका था और विन्ध्य प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के मुख पत्र 'विन्ध्य भारती' के १९५५ और ५६ के दो अक में वह अध्ययन प्रकाशित हो चुका है। स्पष्ट ही यह काय मैंने १९५४-५५ के आस पास किया होगा। और भी जो कुछ मैंने समझा है समर्थ कवि ब्रजेश के सबध मे उसे मैंने इस सक्षिप्त विवेचनात्मक कृति मे स्थान स्थान पर अकित कर दिया है। ब्रजेश जी का साहित्य अधिकांश क्या पूरा का पूरा अप्रकाशित ही रह गया। अब उनकी पाण्डुलिपियाँ भी शायद ही मिले। मेरे पास उनके जो छन्द थे उन्हे मै ग्रन्थ के अंत मे दे रहा हूँ जिसमे हिन्दी जगत इस अल्पज्ञात कवि के काव्य का कुछ आस्वाद ले सके। पर इस सब के लिए मै भूरिशः धन्यवाद देना चाहता हूँ और उससे भी अधिक कृतज्ञता ज्ञापन करना चाहता हूँ रीतिकाव्य के मर्मज और अपने साहित्यिक अनुज इलाहाबाद के डॉ.किशोरी लाल का और उनके पट्ट शिष्य और गहरे साहित्यानुरागी डॉ पन्नालाल का जिन्होंने अपन ढग से साहित्य की सेवा और सरक्षण मे 'लाचन खरचि रचि आखर खरीदे हैं' की उक्ति को अत्याधुनिक काल मे भी चरितार्थ किया है। ब्रजेश पर सभव है दो चार छोटे बड़े शोध कार्य भी हुए हों पर अप्रकाशित होने के कारण साहित्य समाज का ध्यान उधर नहीं जा सका है। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मेरे इस लघु प्रयास के परिणाम स्वरूप आगे के साहित्यानुरागियो मे कुछ का ध्यान तो आचार्य महाकवि ब्रजेश के आचार्यत्व और कवित्व की ओर अवश्य जाएगा। ब्रजेश जी का चित्र उपलब्ध कराने के लिए मैं रीवा के प्रो आदित्यप्रताप सिंह और उनके शिष्य डॉ.रामलला शर्मा(सीधी) का आभारी हूँ।

-कृष्णचन्द्र वर्मा

१२२ सिन्धी कॉलोनी, लश्कर,
ग्वालियर (मध्य-प्रदेश) ४७४००१,
२६ सितम्बर १९९९

म

संग्रह

काव्याचार्य महाकवि ब्रजेश की वंश परंपरा

ब्रजभाषा के अनेक उत्कृष्ट कवि आज भी हिन्दी-प्रदेश मे विद्यमान है परन्तु न तो हिन्दी पाठको के समक्ष उनकी कविताओं का कोई प्रतिनिधि सकलन हे और न ही कोई ऐसी पुस्तक या पुस्तिका जिसमे उन सब के जीवन और कृतित्व का कुछ भी परिचय हो। प्रस्तुत निबध मे मैं हिन्दी ससार के समक्ष ब्रजभाषा के एक ऐसे श्रेष्ठ कविरत्न का परिचय प्रस्तुत कर रहा हूँ जिनसे अद्यावधि हिन्दी जगत अपरिचित सा रहा है।

ब्रजेश जी सस्कृत के सुप्रसिद्ध साहित्यशास्त्री साहित्यदर्पण के प्रसिद्ध रचयिता आचार्य विश्वनाथ के वंशज थे। उनकी इस दीर्घ वश परपरा में अनेकानेक शास्त्रज्ञ विद्वान और महाकवि हो गए हैं। ब्रजेश जी के अनेक स्फुट लेखो मे उनकी प्रख्यात वश परपरा का विवरण उल्लिखित है। वह उनके अनेक छदो में भी व्यक्त हुआ है। आचार्य विश्वनाथ की इस दीर्घ वश परपरा मे नरहरि, हरिनाथ, विक्रम, सभाराम, शिवनाथराम, अजबेश, महासुखराम, शीतलेश आदि के नाम उल्लेखनीय है। महाकवि ब्रजेश जी श्री शीतलेश जी के आत्मज थे। ब्रजेश जी के पूर्वज महाभट्ट ब्राह्मण थे और सभी को राज्याश्रय प्राप्त था। ये लोग वश परपरा से राजकवि होते आए थे। ब्रजेश जी स्वयं ओरछा नरेश महाराज वीरसिंह जू देव और रीवा नरेश महाराज व्यंकटरमण सिंह और महाराज श्री गुलाबसिंह के राजकवि रह चुके थे। आत्म-परिचय मूलक गर्वोक्ति मिश्रित यह छन्द ब्रजेश जी बडी ही उमंग के साथ सुनाया करते थे-----

महापात्र विश्वनाथ तैसे नरहरिनाथ,
भए हरिनाथ कविमंडल में रवि हैं।
वंसज हैं तिनके ब्रजेश ब्रजभाषाचार्य,
काव्याचार्य कोविद महीपन में छबि हैं।।
जानैं अलंकार गूढ तत्व ध्वनि भावभेद,
छन्द रचना में दास देव ते न दबि हैं।
महाराज रीवा के पुराने कविराज हम
ओरछाधिराज की सभा के राजकवि हैं।।

श्री महापात्र नरहरिदास के एक ही छन्द
राज्य मे गौ-वध बद करने की आज्ञा प्रचारित क
प्रकार है -

अरिहु दंत तृन धरहिं ताहि
हम सदैव तृण धरहिं चरहिं
सुधाक्षीर नित स्रवहिं वत्स
मधुर न हिन्दुहिं देहिं कटुक
कहि नरहरि अकबर साह सु
अपराध कौन मोहिं मारिय

गौ-वध बद हो जाने पर अकबर की प्र
प्रकार है -

दास नरहरि जी सों विनती
साँची गुनि खल
अकबर जारी परवाने किए
वाजिबी विचारि
व्यापिगो हुकुम दिल्लीपति
चारहू महीपन
जीवन कसाइन को गाइन
गाइन की मौत

नरहरिदास जी शास्त्र के पडित तो थे ही,
सिद्धता का परिचय 'वृहद-वश-परिचय' मे दिया
काव्यगुरु भी थे। जब वे देहली से अपने अश्वि
जी उन्ही के पास रह कर साहित्य शास्त्र का
है तथा इसका प्रमाण गोस्वामी जी कृत 'मानस

बंदौ गुरु-पद-कंज, कृ
महामोह-तमपुंज, जासु

नरहरिदास जी संस्कृत, फारसी तथा
इन्होने दो ग्रन्थ लिखे (१) 'हरि विलास'
(२) शृंगार शतक।

महाराज वीरभानुसिंह राज करते थे। उन्होंने चोली बेगम को शरण दी और अमरकटक मे ठहरने की व्यवस्था की। वहीं अमरकटक मे शाहज़ादा पैदा हुआ जिसका नाम अकबर शाह रक्खा गया। एक वर्ष के पश्चात महाराज वीरभानुसिंह ने चोली बेगम को बान्धवगढ किले में बुला लिया। महाराज नरहरि जी शाहजादे के शिक्षक थे। उधर बारह वर्ष के बाद हुमायूँ बडी भारी सेना एकत्र कर दिल्ली की ओर रवाना हुआ। शेरशाह विशाल वाहिनी का समाचार सुन कर भाग गया। हुमायूँ दिल्ली के तख्त पर विराजे। कुछ ही दिनो के बाद महल से गिरकर वे मर गए। इधर महाराज वीरभानुसिंह चोली बेगम को लेकर दिल्ली आए और उन्होंने शाहज़ादा अकबर को ही दिल्ली के तख्त पर बिठाया तथा अनेक वर्षो तक दिल्ली दरबार का प्रबंध उन्ही के हाथो में रहा। नरहरि जी शाह अकबर के शिक्षक और उपदेशक थे। अकबर उनका बडा सम्मान करता था तथा उसने जिला फतेहपुर और रायबरेली मे ५२ मौजा प्रदान किया। महापात्र नरहरिदास जी ने गगा जी के तट पर असनी नामक ग्राम बसाया और वही रहने लगे। नरहरिदास जी का मुगल दरबार मे कितना अधिक सम्मान था इसे गग कवि लिखित इन छन्दो से भली भाँति जाना जा सकता है----

साह अकबर ग्राम बावन बकसि दीन्हें,
नाम नरहरि जे पवैया गजमत्ता के।
साह जॅहगीर हरिनाथ को करोरै दीन्हीं,
हाजिर रहैया हम दिल्ली से तखत्ता के।
साहजहाँ साहब हवेली चौक चाँदनी मैं,
विक्रम बखानै गुणदेव दरखत्ता के।
साह अवरंग ओ बहादुर फरक सेर,
हम हैं कदीम साही सुकवि चकत्ता के॥

साह अकबर महाकवि नरहरि जी को,
कीन्हों महामहापात्र मरयाद जाती मैं।
तापै चौंर चोपदार चामीकर पग दीन्ह्यो,
पालकी मैं कंध केते पुर लिखि पाती मैं।

गंग कवि हेत धने तैसे गज ग्राम दीन्ह्यो,
आज लगि दान मान मौज अधिकाती मैं।
संगदिल साह जहाँगीर भौंह भंग करि,
देत है मतंग पग सोई गंग छाती मैं।

हरिनाथ जोई जोई जाहि के लिलार लीक
सोई सोई यहि दरबार आनि लेत है
महाराज बान्धव नरेश रामसिंह तेरे
कर के भरोसे करतारौ लिखि देत है ॥

इस छन्द पर प्रसन्न हो महाराज रामसिंह ने हरिनाथ जी को एक लाख का दान किया जिसमें बहुत से हाथी, घोडे, ऊँट, पालकी, भूषण, वस्त्र आदि सम्मिलित थे। यह सब दान लेकर हरिनाथ जी जब बान्धवगढ़ के बाहर निकले तब उन्हे 'कलंक' नाम के एक कवि ने यह दोहा पढ कर सुनाया-

दान पाय दोई बढे, की हरि की हरिनाथ।
उन बढि ऊँचो पग कियो, इन बढि ऊँचो हाथ ॥

इस दोहे की गभीर भाव-ध्वनि तथा व्यतिरेक मिश्रित उक्ति पर मुग्ध हो कविवर हरिनाथ ने एक लाख का समस्त दान कलंक कवि को दे दिया। यह घटना बहुत प्रसिद्ध है।

श्री हरिनाथ जी के पुत्र विक्रम कवि हुए जो शाहजहाँ तथा औरगजेब दोनों के दरबार मे रहे। वे विद्वान कवि थे तथा सस्कृत, फारसी और ब्रजभाषा तीनों में रचना करते थे। उन्होंने अपना परिचय इस प्रकार से दिया है-

साह अकबर ग्राम बावन बकसि दीन्हें,
नाम नरहरि जे पवैया गजमत्ता के।
साह जहाँगीर हरिनाथ को करोरै दीन्ही,
हाजिर रहैया हम दिल्ली से तखत्ता के ॥
साहजहाँ साहब हवेली चौक चाँदनी मैं,
विक्रम बखानै गुन देव दरखत्ता के।
साह अवरंग ओ बहादुर फरक शेर,
हम हैं कदीम साही सुकवि चकत्ता के ॥

नरहरि जी के पौत्र श्री उदयनाथ जी हुए जिन्हे बूँदी-कोटा के महाराज ने कवीन्द्र की उपाधि प्रदान की। इनके प्रारभिक छन्दो में 'उदयनाथ' नाम का प्रयोग हुआ है, बाद मे ये 'कवीन्द्र' का प्रयोग करने लगे। उनकी रचना के कुछ उदाहरण इस प्रकार है -

को धौं आम खास मैं हठीलो राव बुद्धसिंह
चंचली ही चमकी कटारी कौंध कर मैं।

उदैनाथ उद्धत वजीर मारि डारि दीन्ह्यौ
कीन्ह्यौ जैतवारी को सुयश घर घर मैं।
गैर गैर खैर-भैर माचो बादसाही बीच
आडो भो न कोऊ लोह कोह की कहर मैं।
साहजादे हक्क बक्क हजरत हक्क बक्क
सूबे सब हक्क बक्क हाडा की हहर मैं ॥१॥

आजु लौं न काहू ऐसी कही है अनैसी
जैसी सैयद कही है ये कलंक काहि चढ़ैंगे।
दिल्ली के नरेश आये दूजे के नगारे बाजे
हम सुनि भागे तो कवीन्द्र कहा बढ़ैंगे।
कहै राव बुद्ध हमैं करने हैं युद्ध स्वामि
कारज सों शुद्ध ह्वै जहान यश मढ़ैंगे।
हाडा कहवाय कै कढ़ैंगे नहीं हारि करि
रारि करि आज तेग काढि करि कढ़ैंगे ॥२॥

पैजनी पगन चूरी बैजनी करम चारु
छोटी सी नथूनी बड़े मोतिन की सोही है।
सादी ओढनी मैं जरहारी से दिखान लागी
छोटी घांघरी मैं घेरवाली जेब जोही है॥
भनत कवीन्द्र रंग होन लागे अंगन मैं
शिशुता मैं यौवन की जोति अवरोही है।
तोही मैं उरोजन के अंकुर उठन लागे
तोही तैं विलोकि जानि परत न तोही है ॥३॥

श्री उदयनाथ के पुत्र सेनापति हुए जिनकी रचना इस प्रकार है -

पर कर परै याते पाती तौ न दीन्ही लाल
कीन्ही मनुहार तौ सभा में कत भाखिए।
बानी यह दूती की जेठानी कान परी जानि
सोचि रही ऊतर उचित मन माखिए॥
पाती पाती कहै कोऊ लावै जो कहूँ की पाती
दै के शिर पाव तो हरा मैं बाँधि राखिए।

श्री सेनापति के पुत्र बेनी कवि बहुत प्रसिद्ध हुए है उनकी रचना का उदाहरण देखिए

पाय प्रभुताई कुछ कीजिए भलाई भाई
हयॉ न थिरताई बैन मानिए कविन के ।
यश अपयश रहि जात पुहुमी के बीच
रजत खजाने बेनी साथ गए किनके ।।
और नरनाहन की गिनती गिनावै कौन
रावन से ह्वै गए त्रिलोक बस जिनके ।
चोपदार चाकर चमूपति चमर कर
मंदिर मतंग ये तमासे चार दिन के ।।

इसी वश परपरा मे सस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान नीलकण्ठ, श्री शिवनाथ जी तथा श्री सभाराम जी हुए जो अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे । वे बावन मौजा के तालुकेदार थे और गंगा तट पर असनी नामक गॉव मे निवास करते थे । इनके समय मे एक बार श्री बान्धवेश अजीतसिह कुछ कारणवश असनी पहुँच गए । उनके पहुँचने का कारण वृहद-वश-परिचय मे दिया हुआ है । रीवा नरेश महाराज अजीतसिह ने एक बार श्री सभाराम जी को रीवा बुलवाया परन्तु वे गए नहीं । बाद में इलाका नष्ट होने पर उन्होने अपने पुत्र श्री शिवनाथराम को रीवा भेजा । बान्धवेश श्री अजीतसिह जी ने शिवनाथराम को २५००० का गुजारा दिया(ग्राम दिया) तथा अपने दरबार का राजकवि बनाया और ग्रामपाल चोपदार आदिक मर्यादा प्रदान की । ये जयदेवसिंह को साहित्य का उपदेश दिया करते थे और महाराज के भेजने पर अन्य राजाओं के पास जा कर महाराज रीवा का कार्य किया करते थे । इनकी रचना के कुछ उदाहरण देखिए -

साजी सेन भूपति अजीत जंग जीतिबे को
बाजी बंब सोहैं संग सुभट कुरीन के ।
हॉकि हॉकि मारे अरि उरन बिदारे भूमि
पारे लौं हलति खुर धमक तुरीन के ।।
कहै शिवनाथ रुंड पटके धरा मैं मुंड
कटिगे भुसुंड कुंभ फटिगे करीन के ।
झिलम झनाके परे तोपन ठनाके आज
मॉचे रणखग्गन खनाके खोपरीन के ।।
पट्टन समेत रोहतास हू कलींजर के
प्राग के किले को अधिकार अभिलाखने ।

पच्चमे बढावने घटावने सुजात दौले
छावने पछाह मुख साँची बात भाखने ।।
वीरभान वंस के निसान श्री अजीतसिंह
कानन चकत्ता को सुयश सुधा चाखने ।
दाहन को दक्षिनी निबाहन को दिल्ली
दल बाहन के जोर पातसाहन को राखने ।।

महाराज श्री जयसिंह देव के प्रताप का वर्णन

नौहू खंड सातौ दीप दीप सों दिपत जासों
शैल वन खण्ड मैं अखंड भा भरत जात ।
कोक कोकनद मित्र शोक सों रहित शिव
नाथ प्रति लोक मैं विकास वितरत जात ।।
महिम मदंध चंद मंद से निहारिय
मान अरिवृंदन उलूकन हरत जात ।
तापकर दूजो जयसिंह को प्रताप पेखि
तापकर प्राची तैं प्रदक्षिना करत जात ।।

शिवनाथ जी के पुत्र श्री अजबेश राम जी म विश्वनाथ सिंह तथा म रघुराजसिंह के दरबार मे रहे । ये फारसी और ब्रज साहित्य के अच्छे ज्ञाता थे । इन्होंने बान्धव गद्दी के महाराज की वंशावली लिखी है । इनके रचे छन्द इस प्रकार है -

दिल्ली के जितेक सरदार मनसबदार
राजा राव उमराव सबको निपात भो ।
बेगम बिचारी बही कतहूँ न थाह लही
बाँधोगढ गाढ़ो गूढ ताके पक्षपात भो ।।
शेरशाह सलिल प्रलै को बढो अजबेश
बूडत उमा ऊ के बडोई उतपात भो ।
बलहीन बालक अकब्बर बचाइबे को
वीरभानु भूपति अक्षैबट को पात भो ।।

संगर समत्थ सजो भूप विश्वनाथसिंह
वीरता को रूप खूब आनन लखात है ।
मारु बजे बाजे गाजे द्विरद दतारे भारे
सुभट समूह सावधान दरसात है ।।

विक्रम विहद्द हिंदुवान हद्द अजबेश
जयसिंह के नद के अनद अधिकात है।
तरकत जात बंधु करकत जात फौज
फरकत बाहु बाजी थरकत जात है।।

उठी अँगिरात परयंक मैं प्रभात समै
आज एक ललना बिलोकी बलबीर मैं
अधखुली आँखिन की आभा अजबेश वेश
कुन्दन सी तैसी दिपै दीपति शरीर में।।
उरजनि मैं विराजी कछु रोमराजी
मुख सुखमा की छटा छाजी छवि भीर
चंद के उदोत मनो जोरी चक्रवाकन की
बैठी जाय बिछुरी तरनिजा के तीर मैं।।

श्री अजबेश राम के पुत्र श्री महासुखराम जी हुए जो व्याकरण शास्त्र वे
स्कृत के अच्छे ज्ञाता थे और ब्रजभाषा मे सुंदर रचना करते थे। ये कवि
ही रखते थे। ये महाराज रघुराजसिंह के दरबार मे रहे। इनकी रचना
-

महाराज रघुराज खेल्यो फाग महाकवि,
छाई देश दिशन गुलाल लाली जोर तैं।
अरुन उदोत जानि मानि कै प्रभात मिले,
चक्रवाक चकईन आनंद हिलोर तैं।।
पंथी पंथ लागे हरियश अनुरागे संत,
जागे कंत कामिनि विहंगन के सोर तैं।
फूलि उठे पंकज पसरि परिमल रहो
भूलि उडे गुंजत मधुप चहुँ ओर तैं।।

साह अकबर फेरि पाई पातसाही जब
वीरभानु भूपति सहाय अभिलाखी है।
भूपति अजीतसिंह राख्यो साह गौहर को
हारिगो नवाब झारि झारखंड साखी है।।
आज महाराज रघुराज की शरण आय
आपनी विपत्ति अँगरेज़न हू भाखी है।
नर नरनाहन सदा ही पातसाहन को
विपति परे पै पति बाँधोपति राखी है।।

श्री महासुखराम जी क पुत्र श्री महापात्र शीतल प्रसाद जी 'शीतलेश' हुए जिन्होंने 'गुलाब गौरव' नामक ग्रथ लिखा। इसी पुस्तक का दूसरा नाम 'गुलाब प्रकाश' भी है। ये ब्रजभाषा साहित्य क पूर्ण पडित थे तथा महाराज व्यकटरमण सिंह और महाराज गुलाबसिह दोनों की सभा के राजकवि रहे। इनकी रचना के उदाहरण इस प्रकार है :-

पारावार है न उग्रहान वारे पारावार
बाजि के सवार केते पैदर गमन के।
पसर पसारे पंखुरन पसारे सदा
अवसर प्यारे बंधवेश जू के मन के॥
कवि शीतलेश कसे कमर समर वारे
ओज मैं अमर खल दल के दमन के।
सत्रु बिन मारे जे न पलटन वारे ऐसे
पलटन वारे वीर व्यंकट रमन के॥

महाराज धन्य आज वीर व्यंकट रौन
जाके सम कौन रणधीर जग जायो है।
सुयश अमंद कवि शीतल महीतल मैं
चारौ ओर चंद के समान छवि छायो है॥
मारि मारि केते खलवृंदन बँदूखन सों
हरिहर छेत्र मैं अनंद अधिकायो है।
ज्यों गोविंद ग्राह तै गयंदहि छुड़ायो
बांधवेश त्यों कमाइन तै गाइन बचायो है॥

श्री शीतल प्रसाद जी 'शीतलेश' के पुत्र महाकवि ब्रजेश जी हुए। ब्रजेश जी का जन्म स १६२८ माघ शुक्ला तीज को रीवा नगर के समीप ही सिलपरी नामक ग्राम मे हुआ। अपने पिता श्री शीतलेश प्रसाद जी से इन्होंने दस वर्ष से छब्बीस वर्ष की आयु तक काव्य शास्त्र का अध्ययन अत्यत परिश्रमपूर्वक किया। दस वर्ष से लेकर बीस वर्ष की आयु तक इन्होंने १८ ग्रथ कठाग्र कर लिए थे जिनमे से १४ ग्रथ ब्रजभाषा के थे और ४ ग्रथ सस्कृत के। भाषा के ग्रथ ये अपने पिताजी से पढा करते थे तथा सस्कृत के ग्रथ निपनियाँ के प्रसिद्ध पडित गौरीशकर जी से परन्तु इन्हे शास्त्रार्थ में सतोष नही होता था, सकोच करना पडता था अत. घर से बाहर निकलकर छः वर्ष तक हिन्दुस्तान

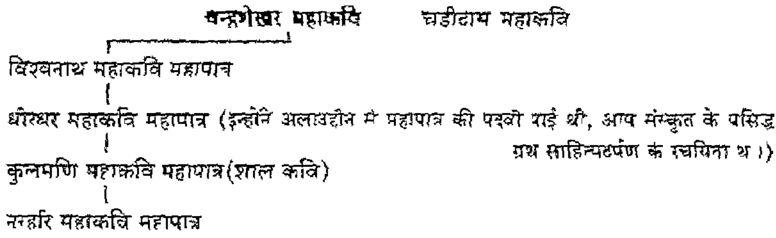
के अनेक विद्वानो से शास्त्रार्थ करते हुए पठन-पाठन में लगे रहे। इन्होने देश के अनेक स्थानों का भ्रमण किया तथा अनेक विद्वानो से शास्त्रार्थ करते हुए साहित्य के छुपे हुए गूढ तत्व समझते रहे। काव्य-रचना तो ब्रजेश जी द्वादश वर्ष की अवस्था से ही करने लगे थे। छः वर्ष तक देशाटन करने के अनंतर श्री ब्रजेश जी रीवा आए और महाराज श्री व्यंकट रमण सिंह जी के दरबार म रहने लगे। यद्यपि उस समय ब्रजेश जी के पिता श्री शीतलेश जी राजकवि थे फिर भी ब्रजेश जी दरबार में जाया करते थे और रीवा के विद्वान कवियो को शास्त्रार्थ मे पराजित किया करते थे। कुछ समय पश्चात् ब्रजेश जी अन्य राजदरबारों मे जाने लगे। इन्होने अवध प्रात के कई राजाओ को काव्य शास्त्र का अध्ययन कराया। बाद में महाराज ओरछा के दरबार में ये राजकवि के पद पर नियुक्त हुए। इसी अवधि मे इन्होंने बहुत से ग्रथो की रचना की जिनमें रस-रसांग-निर्णय, अलकार निर्णय, शृगार-शिरोमणि, रमेश रत्नाकर तथा विश्वनाथ शरण भूषण प्रमुख हैं। इनके लिखे अन्य ग्रंथ हैं - माधव विलास, बिरह वाटिका, सोरठशतक, शातशतक, मोहन चरित्र माला, ब्रजेश विनोद। १६४६ मे देशी राज्यों के विलयन तथा विन्ध्य प्रदेश सरकार के निर्माण के अनंतर ब्रजेश जी को पहले २५रु. मासिक की और कुछ काल पश्चात् ५० रु मासिक वृत्ति मिलने लगी थी। आर्थिक दृष्टि से उनकी दशा अच्छी न थी परन्तु उनकी देह स्वस्थ थी और ८५-८६ की अवस्था में भी कवि सम्मेलनो और गोष्ठियो मे उत्साह पूर्वक भाग लिया करते थे। रीवा की कवि-त्रयी : ब्रजेश, अबिकेश और रामाधीन लाल खरे में वे सर्वाधिक सम्मान्य और श्रेष्ठ थे। २६ मई १६५७ को उन्होंने यम का अनिवार्य आतिथ्य स्वीकार करने के लिए महाप्रयाण किया।

ब्रजेश के पूर्वज

ब्रजेश जी के पूर्वजों के संबंध मे कुछ सूचनाएँ हमें डॉ सरयू प्रसाद अग्रवाल के प्रबंध ग्रंथ 'अकबरी दरबार के हिन्दी कवि' से मिलती हैं। (स.२००७ पृ ५९-६३)

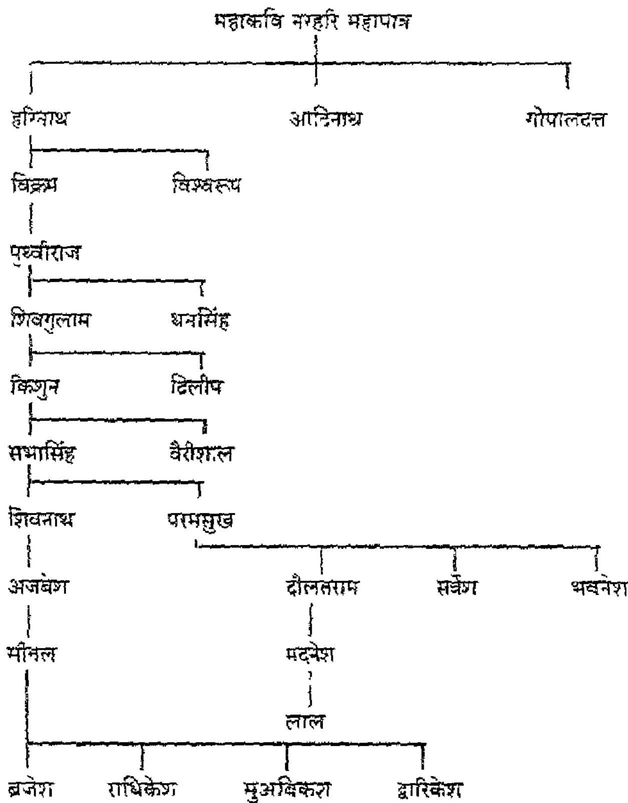
ब्रजेश जी ने अपने को साहित्य दर्पणकार महापात्र विश्वनाथ नरहरि और हरिनाथ ऐसे इतिहास प्रसिद्ध प्रतिभाशाली कवियों और विद्वानो का वशज कहा है। इस तथ्य की पुष्टि डॉ अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत सूचनाओं से भी हो जाती है।

नरहरि ब्रह्मभट्ट जाति के थे और कश्यप गोत्र में उत्पन्न हुए थे। नरहरि के पूर्वजो का क्रम श्री विपिन बिहारी त्रिवेदी ने (विशाल भारत, फरवरी १६४६ मे प्रकाशित) एक लेख (महाकवि नरहरि महापात्र) में दिया है-



नरहरि के वशजो का विवरण 'अश्वनी चरित्र' के आधार पर इस प्रकार है -

(देखिए-हिन्दुस्तानी,जनवरी-मार्च १९४५ में प्रकाशित लेख महाकवि नरहरि और उनके काव्य पर एक दृष्टि)



डॉ अग्रवाल लिखते हैं कि उक्त वंश मे ब्रजेश जी तथा लाल जो प्रतिष्ठित कवि
र रीवा तथा अन्य रियासतो मे इनका यथेष्ट मान भी है।

(१९५४-५५)

महाकवि ब्रजेश : एक परिचय

विन्ध्य प्रदेश के लिए यह अत्यंत गर्व का विषय है कि उसके अंक मे जन्म लेने और पालित होने वाला काव्याचार्य ब्रजेश ऐसा अविरल काव्य साधना के दुर्गम पथ पर ८३ वर्ष की आयु मे भी अथक गति से चल रहा है। श्री ब्रजेश जी का जीवन तप और साधना का जीवन है और आज भी जीवन की उमंग जैसी उनमे देखने को मिलती है वैसी तो आज के तरुणों मे भी नही परिलक्षित होती। आज उन्होने ८३ वर्ष की आयु पूरी कर ली है। उनकी वर्षगाँठ पर हम उनके शतायु होने की कामना करते हैं।

ब्रजेश जी का जन्म माघ शुक्ल ३ स १९२८ को रीवा के सिलपरी ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री शीतलेश जी स्वत. एक श्रेष्ठ कवि थे। साहित्यदर्पण के प्रसिद्ध रचयिता विश्वनाथ एवं मुगल सम्राट अकबर के दरबारी कवि नरहरि आपके पूर्वज है। आपने अनेक वर्षो तक काव्यशास्त्र का गभीर अनुशीलन किया और एक अधीत कवि के रूप में साहित्य जगत में आए। इस प्रकार साहित्य शास्त्रीय अतर्दृष्टि एवं कवित्व शक्ति परम्परागत एवं श्रमार्जित दोनो रूपों में उन्हें प्राप्त हुई। ब्रजेश जी के जीवन का बहुत बडा भाग नरेशों के यहाँ राज्याश्रय में बीता। ओरछा नरेश श्री वीरसिंह जू देव तथा रीवा नरेश महाराज व्यंकटरमण सिह एवं महाराज गुलाबसिंह आपके आश्रयदाता थे।

अपने कई ग्रंथो की रचना की है। अपने 'माधवविलास' में कवि ने अपने गुरुदेव



का जीवनवृत्त विस्तारपूर्वक लिखा है तथा 'मोहन-चरित्र-माला' में महात्मा गाँधी का चरित्र एव जीवन चित्रांकित किया गया है। रीति परपरानुसार रस एव अलंकार पर भी विशद विवेचना के साथ आपने ग्रथ प्रणयन किया है। 'रस-रसाग-निर्णय' इस परंपरा का एक अद्वितीय ग्रथ है, रस के नवीन विवेचको की विवेचनाओ की बात मैं नही करता किन्तु जिस परपरा के अनुसरण मे यह 'रसशास्त्र' ब्रजेश जी ने प्रणीत किया है उस परपरा मे 'रस-रसाग-निर्णय' सा पूर्ण, व्यवस्थित एव विश्लेषणयुक्त ग्रंथ दूसरा नहीं है। शृंगार के एक से एक उत्तम एव अभिनव भाव एव उद्भावना पूर्ण छदों में गभीरता एव अद्भुत अनुरजक शक्ति का एक साथ समावेश हो गया है तथा अपने छदो की उत्कृष्टता के सबध मे उनकी इस उक्ति को-

जानैं अलंकार गूढ तत्वध्वनि भावभेद
छंद रचना मैं दास देव ते न दबि हैं।

मैं गर्वोक्ति न मानकर स्वभावोक्ति ही मानता हूँ। अपने काव्य मे नवीन विषयो का भी सुदर समावेश ब्रजेश जी ने किया है किन्तु उनकी अक्षय महिमा का कारण उनका वह काव्य है जिसका मूल्यांकन करते हुए भविष्य का समालोचक उन्हे केशव, देव, सेनापति, बिहारी, मतिराम, भिखारीदास, पद्माकर और रत्नाकर की परंपरा का उज्ज्वल रत्न घोषित करेगा और समग्र हिन्दी संसार उनके अप्रकाशित कृतित्व के प्रति आदर के साथ सिर झुकाएगा। हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि हिन्दी साहित्य की यह विभूति चिरायु हो।

ब्रजेश जी की कृतियाँ इस प्रकार हैं - १. रमेश रत्नाकर २ माधव-विलास ३. अलंकार निर्णय ४. रस-रसाग-निर्णय ५. शान्त शतक ६ रामायण सांग्ठ शतक ७ शृंगार-शिरोमणि ८ मोहन-चरित्र-माला ९. विश्वनाथशरण भूषण १० विरह वाटिका ११ ब्रजेश विनोद।

जिन ग्रंथो का रचना काल ज्ञात है उसका विवरण इस प्रकार है -

१.शृंगार-शिरोमणि सं. १९७१ (सन् १९१४)

२.रस-रसांग-निर्णय सं. १९९३ (सन् १९३६)

३.मोहन-चरित्र-माला सं. २००७ (सन् १९५०)

४.ब्रजेश विनोद सं. २०१२ (सन् १९५५)

(दैनिक जागरण रीवा मे 'महाकवि ब्रजेश चिरायु हो' शीर्षक लेख २५.१.१९५५)

महाकवि ब्रजेश : एक संस्मरण

रीवा के महाकवि-ब्रजेश को हिन्दी जगत में ही बहुत से लोग नही जानते। वह ऐसा व्यक्ति था जिसने लगभग ६० वर्षो तक ब्रज साहित्य की अनन्य साधना की किन्तु जिसके अध्ययन अनुभव और ज्ञान का मथन-जन्य साहित्य नवनीत प्रकाशित पुस्तक के रूप में न तो उसके जीवनकाल में आ सका और न आज तक ही। ब्रजभाषा साहित्य भण्डार की श्री वृद्धि कर यह महाकवि लगभग ८६ वर्ष की आयु मे मई १९५७ को परलोकवासी हुआ।

वर्षो तक रीवा मे रहने के कारण मुझे महाकवि ब्रजेश के दर्शन का अनेक बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। विन्ध्यप्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशनो मे तथा समय समय पर आयोजित कवि गोष्ठियों एव विचार गोष्ठियो मे ब्रजेश जी उत्साह पूर्वक आया करते थे। ८०-८५ वर्ष का वयोवृद्ध साहित्यकार जब भी किसी सभा समाज मे आता उपस्थित जन समुदाय में श्रद्धा, आदर, विस्मय और प्रसन्नता की मिश्रित भावनाएँ सजग हो उठा करती थीं और लोग 'आइए ब्रजेश जी' कह कर उनका स्वागत करने को खडे हो जाया करते थे। ब्रजेश जी काली के उपासक थे। उनका स्वरूप बाघव नरेशों का प्रिय स्वरूप था। लम्बी श्वेत दाढी जो बीचों बीच से विभक्त होकर उभय पक्षों में गोलाकार होकर ऊपर उठती हुई कानो मे बँध जाया करती थी और सिर पर मुरेठेदार तूनी रंग की पगडी। मस्तक पर विशाल लाल टीका। लंबा कोट, धोती या चूड़ीदार पैजामा और जयपुरी जूता-यही उनकी प्रिय वेशभूषा थी। ये भट्ट ब्राह्मण थे और साहित्य दर्पण के प्रख्यात रचयिता आचार्य विश्वनाथ के वंशज। काव्य और शास्त्रज्ञान इनकी परम्परागत निधि थी। अनेक वर्षों तक ये भारत के विभिन्न प्रसिद्ध नगरो और विद्याकेन्द्रों मे अध्ययन और ज्ञानवर्धन के उद्देश्य से जाया करते थे। सस्कृत और हिन्दी साहित्यशास्त्र के अनेक ग्रंथ उन्हें कठस्थ थे। साहित्य शास्त्र अर्थात रस, ध्वनि, अलकार, छंद, दोष आदि विषयों के वे पूर्ण ज्ञाता और आचार्य थे। उनके अनेक ग्रथ

इस कथन के प्रमाण है - रस-रसाग-निर्णय, अलकार-निर्णय, शृंगार-निर्णय, रमेश रत्नाकर और विश्वनाथ शरण भूषण। इनके अन्य ग्रथ है - माधव विलास, विरह वाटिका, सोरठ शतक, शात शतक, ब्रजेश विनोद और मोहन-चरित्र-माला। अतिम रचना महात्मा गाँधी के जीवन वृत्त से सबधित है।

जिस समय ब्रजेश जी काव्य-पाठ करने लगते थे, ब्रजभाषा काव्य में गति रखने वाले लोग झूम उठा करते थे। अन्य लोगो के पल्ले तो कुछ न पड़ता था ऐसे कुछ लोग उन्हे पुरानी पीढी का बूढा कह कर हँसा भी करते थे। कुछ लोग उन्हे भाट भी कहा करते थे परन्तु हम तो यही कह सकते है कि -

नोलूक्योवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्

भरत ने ठीक ही कहा है -

महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल बच विसिषन्ह बाँची।

ब्रजेश जी रीवा और ओरछा राज्यों के राजकवि भी रह चुके थे। ओरछेश महाराज वीरसिह जू देव तथा रीवा नरेशो महाराज व्यकटरमण सिह एव महाराज गुलाबसिंह की राजसभाओं को वे सुशोभित कर चुके थे। देशी राज्यो की सत्ता समाप्त होने के अनतर उन्हे विन्ध्य प्रदेश शासन की ओर से कविवृत्ति भी मिला करती थी जो पहले २५ रु. थी बाद में बढ़ाकर ५० रु. कर दी गई थी।

हाँ तो बात मै ब्रजेश जी के काव्य पाठ की कर रहा था। राजकीय समारोहो मे भी उन्हे जाना पडता था क्योंकि उन्हें राज्य से वृत्ति मिली करती थी। रीवा की कवि त्रयी-अबिकेश, ब्रजेश और रामाधीन की कविताएँ ऐसे समारोहो पर अवश्य होतीं। १५ अगस्त और २६ जनवरी को विन्ध्य प्रदेश शासन की ओर से आयोजित कार्यक्रमों मे उन्हें जाना पडता था। चारों ओर राजकीय शासनाधिकारियों की खचाखच भीड होती। कीमती और उत्कृष्ट भोज्य सामग्री से दर्शकवृन्द की प्लेटे भरी होती। उसके बीच उनकी कविता का स्वाद लेने वाले थे ही कितने। ऐसे अवसरों पर उनकी उनकी कविता का रंग फीका पड जाया करता था। लोग उन पर हँसते अधिक थे उनकी कविता पर रीझते कम थे। हाँ कुछ कद्रदान उनकी युक्तियो और उक्तियों पर भले ही मुग्ध हो लेते बथे। परन्तु कवि गोष्ठियों और वृहद कवि सम्मेलनों के तो वे शृंगार थे।

जिस समय वे अपनी ब्रजभाषा की ललित रचनाएँ सुनाने लगते थे वे स्वयं तो स्थितिप्रज्ञ से रहते थे परन्तु उनके शब्द अपने वजन के बल से पाठकवृन्द को दोलायमान किया करते थे। उन्हें अपने छन्द इस तरह से कठस्थ थे कि कभी कही भी एक शब्द वे भूलते नही थे। पचासो छन्द सुन लीजिए पर क्या मजाल कि एक शब्द के लिए भी उन्हें कहीं पर अटकना पड जाए। घंटों वे अपनी रचना एक से उत्साह के साथ सुना सकते थे। बीच बीच में वे अलंकार, गुण, ध्वनि और नायिका आदि का भी निर्देश

करते चलते थ जिमसे श्रोता को उनके आचार्यत्व का भी भान होता रहता था। अपने कुछ छन्द उन्हे इतने प्रिय थे कि प्राय. प्रत्येक समाज म वे उन्हे सुनाया करते थे। एक छन्द इस प्रकार है-

वृन्दावन बेचन दही मैं जब जाउँ बीर
मेरा सुनि नाउँ नेहबुल नियरात हैं।
त्यागि देन बेनु बनमाल कहूँ धेनु कान्ह
दान मिस दौरि देखिबे को ललचात हैं।।
कहत ब्रजेश अंग सौरभ सघन केश
बार बार बदन सराहि सकुचात हैं।
मेरी ओर हेरि हेरि भौंर बनि जात हैं
सुमोर बनि जात हैं चकोर बनि जात हैं।।

कहते हैं जब कोई उनके दर्शनार्थ जाता था तो वे उसका स्वागत अपनी कविताएँ सुनाकर किया करते थे। किसी सज्जन के मुँह से मैंने सुना था कि एक बार ब्रजेश जी ज्वरग्रस्त थे। जब वे उन्हे देखने गए तो ब्रजेश जी रोग शैया से उठ बैठे और अनायास काव्य मदाकिनी वहाने लगे। ब्रजेश जी भूल गए कि वे ज्वरग्रस्त है और ऐसी दशा म काव्य पाठ उनके लिए कष्ट का कारण हो सकता है। यह है ब्रजेश जी का काव्य प्रेम। वे सचमुच साहित्य प्राण थे। उनके जीवन का दूसरा कोई लक्ष्य न था। वाग्देवी की साधना करते हुए उन्होंने देह त्याग किया परन्तु साहित्य के प्रति अनन्य निष्ठा रखने वाला सरस्वती पुत्र आज दिखाई नही देता। ब्रजेश जी के जैसा साहित्य प्रेम आज विरल है।

एक बार शुभकामनाएँ लेकर मै भी ब्रजेश जी के निवास स्थान (उपरहटी) पर गया। वे एक अधोवस्त्र (धोती) मात्र धारण किए हुए घर के कामो में लगे हुए थे। उत्साहपूर्वक वे आए, मुझे और एक अन्य साथी को अंदर ले गए। विना पगड़ी के उनके मुख मण्डल पर उनका विशाल मस्तक देख कर मै बहुत प्रभावित हुआ। जिस चीज को देख कर मुझे बडी ही करुणा पैदा हुई वह थी ब्रजेश जी की आर्थिक दशा। उनका मकान कच्चा था। जहाँ वे लेटते, पढते, लिखते या आगन्तुको को बैठाते थे वह स्थान एक दालान की तरह थी। रईसों के अस्तबल भी उससे चौगुने अच्छे होते है। उसी में एक चारपाई और जमीन पर एक ताड की चटाई पडी हुई थी। चारपाई पर उनके ओढ़ने बिछाने के सामान और दालान में एक कोने में लाल सफेद कपडों के दो तीन बस्ते जिनमे उनकी पाण्डुलिपियाँ रखी हुई थीं। मेरे हृदय से प्रतिक्षण यही करुण आह निकल रही थी कि हाय रे अभागा देश जिसके तपोपूत साधक की यह दुर्दशा ! ब्रजेश

जी कविताए सुना रहे थे पर मेरा मन उनकी आर्थिक विपन्नता और दरिद्रता के भँवर मे पडा हुआ था। हमारी और विश्व की थोथी शुभकामनाओ का उसके लिए क्या मूल्य जिसकी ८४ वर्ष की अवस्था मे भी जीवनव्यापी साधनाओ का समाज, देश और ससार ने यह पुरस्कार दिया। मैं लज्जित, खिन्न और विषण्ण मन वापस लौटा।

ब्रजेश जी के खान-पान के विषय में भी दो एक बातें यहाँ उल्लेखनीय है। वे दिन मे एक बार भोजन करते थे लगभग ३ बजे। एक बार जल पीते थे और एक बार चाय। उनकी चाय भी असाधारण हुआ करती थी। एक सेर पानी जब खौलते खौलते आधा सेर रह जाता था तब वे उसे पीते थे। चाय और शक्कर के अतिरिक्त उनकी चाय में दालचीनी गोलमिर्च पर्याप्त दूध तथा अन्यान्य मसाले पडा करते थे। भोजन मे भी वे शाक अनेक प्रकार के लिया करते थे। भोजन वे स्वय बनाया करते थे और इसलिए लम्बी यात्रा मे जाते हुए वे लगभग सौ मील के बाद रुक जाया करते थे। वे पान के भी प्रेमी थे। ८६ वर्ष के आयु मे भी वे पान अपने हाथ से लगाकर पीतल की खल मे पीतल के बट्टे से कूच कर खाया करते थे। उनके पान मे भी अनेक प्रकार के मसालो का योग हुआ करता था। उनकी आय इतनी कम थी कि उनका जीवन सुखपूर्वक नही चल पाता परन्तु कभी भी वे अपने आर्थिक सकटो की चर्चा करते नही पाए गए।

ब्रजेश जी मे असाधारण शालीनता थी और सभा के योग्य असाधारण गुण। प्राचीन साहित्य और सस्कृति मे उनका अगाध विश्वास था। सभाओ मे वे उन कवियो की तरह कभी आचरण नहीं करते थे जो मंच पर कविता पाठ का अवसर पा कर फिर जल्दी हटने का नाम ही नही लेते। वे एक या दो छन्द पढ कर उठ जाया करते थे क्योंकि वे समझने लगे थे कि आज का श्रोता उनकी ब्रजभाषा कविताओ का प्रेमी नहीं रहा परन्तु यदि उनसे कोई अधिक कविताएँ सुनाने का आग्रह करता तो वे बिना किसी मनावन के प्रेमपूर्वक उतनी कविताएँ सुना दिया करते थे जितने से पाठक तृप्ति का अनुभव कर ले। वे काव्य के प्रेमियो और रसिको की पहचान रखते थे। अपना नाम वे ब्रजेश न लिख कर, महाकवि ब्रजेश, लिखा करते थे तथा वार्धक्य में जैसा प्राय: हो जाया करता है कुछ आत्म प्रशस्ति भी किया करते थे जैसा रस-रसाग-निर्णय या शृगार-शिरोमणि की भूमिकाओ अथवा 'वार्तिको' मे देखा जा सकता है। रीवा में अनेक वर्ष उनकी जयन्ती मनाई गई। उसमे वे सोत्साह भाग लेते थे। सम्मान की उन्हें सहज भूख थी। सच्चे कवि को धन का लोभ नही हुआ करता किंतु अपनी काव्य सृष्टि के बदले में यदि उसे उचित प्रशंसा और सम्मान भी न मिले तो इससे अधिक दु:ख और सताप की बात उसके लिए दूसरी नहीं हो सकती। हिन्दी ससार ने उनके जीते जी उनका उचित सम्मान नही किया।

(मह, २७ सितबर १९५१)

महाकवि ब्रजेश : दूसरा संस्मरण

महाकवि ब्रजेश का चित्र मेरे स्मृति-पटल पर चिर अंकित रहेगा। जिस रीति साहित्य से मुझे इतना लगाव रहा है उसका ऐसा अनन्य पुजारी मैंने दूसरा नही देखा। प्रत्येक इंच वे एक रीतिकवि थे। वेषभूषा, आकार-प्रकार, रहन-सहन, आचार-विचार सभी दृष्टियो से वे उत्तरमध्ययुगीन कवि प्रतीत होते थे। सिर पर लाल पगड़ी, लंबा बलिष्ठ शरीर, घुटने तक का बंद गले का खाकी कोट, धोती और जयपुरी जूते, बीच से विभक्त होकर दोनो ओर को छहरती हुई रघुराजसिंह शैली की सफेद दाढी तथा भाल पर रोली का विशाल गोल टीका-यही उनका बहिरंग स्वरूप था। ८०-८२ वर्ष के दीर्घ जीवन के अनुभव ज्ञान से संश्लिष्ट ब्रजेश का यह व्यक्तित्व मेरे लिए तो विशेष आकर्षण रखता था। लंबी लाठी के सहारे मंथर गति से चलते हुए आप उन्हे रीवा मे जहाँ-तहाँ देख सकते थे-उपरहटी से तरहटी की ओर चले जा रहे हैं, खटिकहाई के समीप मिल जाएँगे या फिर काव्य गोष्ठियों और साहित्यिक समारोहों में आप उन्हे पा लीजिए। रीवा मे इसी प्रकार ७-८ वर्षो तक मुझे उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। कविगोष्ठियो के तो वे शृंगार थे। नई कविता चल रही हो, प्रगतिवादी काव्य पाठ हो रहा हो, छायावादी प्रेम गीत गाए जा रहे हों, वे बैठ कर शांत चित्त से सबकी कविता सुनते थे और अपना अवसर आने पर मंच पर गंभीर भाव से जाते थे और दो तीन छन्द सुना कर चले आते थे। लोगो के आग्रह करने पर वे कितने ही छन्द सुना दिया करते थे। उनकी स्मरणशक्ति असाधारण थी। एक दो नहीं उन्हें सैकडो छन्द याद थे, कंठस्थ छन्दो की संख्या सहस्राधिक भी रही हो तो आश्चर्य नहीं क्योंकि उनके द्वारा अर्जित साहित्य ज्ञान इसी प्रकार का था। लगभग १०-१२ भाषा और संस्कृत काव्यग्रंथ उन्हे कंठस्थ थे-ऐसा उन्हें अपने युवाकाल में साहित्याध्ययन की दृष्टि से करना पडा था। कविगोष्ठियों या सम्मेलनो मे जैसा कि अनेक कवियों की आदत होती है उनमे यह प्रवृत्ति न थी कि एक बार कविता सुनाने का अवसर आया तो फिर मंच से जल्दी हटने का नाम न ले। वे यह भी जानते

थे कि लोकरुचि ब्रजभाषा काव्य के अनुकूल नही है । खड़ी बोली के काव्य को प्रे के साथ सुना करते थे । उनमें सत्कविजनोचित उदारता थी जो सामान्यतया दुर्ल है । अपने ब्रजभाषा के छन्द सुनाते समय कभी तो वे अलंकार का, कभी ध्वनि क और कभी नायिका विशेष निर्देश कर दिया करते थे जिससे काव्य पारखियों को विशे आनन्द प्राप्त हो सके (खेद है कि वर्तमान काल मे इस प्रकार के निर्देशो के समझने वाले श्रोता न के बराबर रह गए हैं) अन्यथा वे बिना किसी भूमिका के सीधे छन्दपाठ करने के अभ्यासी थे और कुछ छन्द सुना कर उठ आया करते थे ।

मुझे इस बात का सौभाग्य प्राप्त है कि उन्होने दो बार अमहिया मे मेरे निवास स्थान पर पधार कर मुझे कृतार्थ किया था । मेरी प्रणति पर वे सानद आशीर्वाद देते । एक बार विन्ध्य प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की पत्रिका 'विन्ध्य भारती' मे प्रकाशित मेरे एक निबध 'महाकवि व्रजेश कृत रस-रसाग-निर्णय' पर अपने विचारो से मुझे अवगत कराने के लिए आए थे । एक बार एक पत्र द्वारा उन्होंने मुझे सूचित किया था कि उक्त निबंध मे प्रकाशित मेरे कतिपय विचारों से वे सहमत नहीं है । उनके जीवन के अतिम वर्षो में हम लोग विन्ध्य प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से उनकी वर्षगाँठ भी मनाने लगे थे । इस आयोजन मे वे सोत्साह भाग लेते थे ।

मुझे ठीक स्मरण नही किन्तु इतना निश्चय है कि वे 'रस-रसांग-निर्णय' तथा 'शृंगार-शिरोमणि' मे से किसी एक ग्रथ का सपादन कानपुर के डॉ मुशीराम शर्मा 'सोम' से करा रहे थे । मुझे यह भी स्मरण आ रहा है कि वे एक बार जब मै विश्वविद्यालय का छात्र था मेरे गुरुदेव रीतिशास्त्र तथा ब्रजभाषा काव्य के अनन्य प्रेमी एव मर्मज्ञ डॉ. रामशंकर शुक्ल 'रसाल' के पास प्रयाग विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग मे ही पधारे थे । धुरंधर साहित्यिकों के पास ही उनका आना जाना था । मुझे एक अन्य प्रसग भी याद है जब डॉ गोपालशरणसिंह की वर्षगाँठ के अवसर पर किए गए आयोजन मे उन्होने ठाकुर साहब पर एक छन्द पढ़ा था जिसमे उन्होंने अपनी आयुगत ज्येष्ठता के कारण उन्हें आशीर्वाद दिया था । जब तब वे नए और समसामयिक विषयों पर भी छन्द रचना करते रहते थे । गाँधी चरित्र का निर्वचन करने वाली उनकी कृति 'मोहन-चरित्र-माला' है जिसका बहुतों को ज्ञान भी नहीं । रीतिशैली के उनके छन्द पद्माकर और रत्नाकर की ही टक्कर के है । काव्यगुण और रचना शैली के बल पर वे रीतिपद्धति के श्रेष्ठ कवियो की ही श्रेणी में बिठाए जाएँगे । ब्रजभाषा काव्य मे उनकी देन का अद्यावधि मूल्याकन नहीं हो सका है । बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इस आचार्य महाकवि की कृतियाँ उसके जीवन काल में प्रकाशित नही हो सकीं । विन्ध्य प्रदेश के कुछ स्वनामधन्य साहित्यिकों ने उनकी कृतियो के प्रकाशन का बीड़ा भी उठाया था पर उनकी यह साध अपनी समस्त तड़प के साथ उनके मन के ही अंदर रह गई । दरिद्रता मानव के लिए घोर अभिशाप है । हमारा यह सरस्वती पुत्र आजीवन अभिशप्त ही रहा ।

कुछ धनी मानी पदाधिकारमत्त सपन्न व्यक्ति पुरातनपथी समझ कर और भाट कह कर उन पर हँसा भी करते थे क्योंकि ब्रजेश जी को २८ रु मासिक की और बाद मे कुछ दिनो ५० रु मासिक की वृत्ति शासन से मिला करती थी और उन्हे राजकीय समारोहो मे छन्द पाठ भी करना पडता था किंतु ऐसे लोगों को यह समझ रखना चाहिए कि ब्रजेश सी प्रतिभा वाले व्यक्ति साहित्य ससार में अमर रहेगे। उनका यश काय काव्य रूप मे सहृदयो का मन सदा मोहित करता रहेगा, हॉ मिट जाने वाला धन, पद और अहकार उनके पास अवश्य नही था। विनम्रता, गंभीरता और शालीनता की त्रिवेणी ही उनका व्यक्तित्व थी। अर्थाभाव अवश्य उन्हें अत्यधिक था। शीतकाल मे कम्बल कटवाकर बनवाया हुआ लबा कोट पहने उन्हे देखा जा सकता था जो लज्जा से साहित्यिको का सिर अवनत कर देने के लिए पर्याप्त था।

कुछ काल तक ब्रजेश जी ओरछेश महाराज वीरसिह के तथा बाधवेश महाराज व्यकटरमण सिह तथा महाराज गुलाबसिह के राजकवि भी रह चुके थे। ओरछेश इनका विशेष सम्मान करते थे। पुरानी शैली के कवियों की यह त्रयी-ब्रजेश, रामधीनलाल और अबिकेश-कितने ही वर्षो तक अच्छी साहित्यिक परपरा की नगरी रीवा मे प्रसिद्ध रही। इन तीनो कवियों मे पारस्परिक द्वेष का लेश न था।

इसके विपरीत इन तीनो कवियो मे पारस्परिक सद्भाव था। ब्रजेश तीनो मे आयु और कवित्व दोनो ही दृष्टियों से ज्येष्ठ थे।

ब्रजेश जी की आर्थिक विपन्नता का एक उदाहरण अविस्मरणीय है। १९५४-५५ की बात होगी। तत्कालीन विन्ध्यप्रदेश शासन ने पुरस्कारों की घोषणा की थी। पाण्डुलिपियो की तीन-तीन प्रतियॉ साहित्यिको को भेजनी थीं। ब्रजेश जी ने लगभग ८० वर्ष की आयु में '**शृंगार-शिरोमणि**' और '**रस-रसांग-निर्णय**' जैसे वृहदाकार ग्रथो की तीन-तीन प्रतियॉ अपने हाथ से लिखकर तैयार की थी - भला इतना साधन उनके पास कहॉ था कि अपने ग्रथो को टाइप कराकर वे उसकी प्रतियॉ भेज सकते। सतोष की बात है कि उक्त दोनो ग्रथो पर उन्हे पॉच-पॉच सौ के पुरस्कार वि प्र.शासन द्वारा प्रदत्त हुए। फुलस्केप आकार के कागज पर ब्रजेश जी नीली रोशनाई से लिखा करते थे। हाशिया दोनो ओर छोडते थे। लिखने के लिए वे मोटी निब इस्तेमाल करते थे। अक्षर उनके सुन्दर एक से और बडे-बडे हुआ करते थे। शीर्षक अथवा निर्देशक शब्दो को वे लाल पेन्सिल से रग दिया करते थे जिससे उनकी पाण्डुलिपियॉ यथेष्ट सुन्दर लगने लगती थीं। ब्रजेश जी की पाण्डुलिपियों में वर्तनी की अनेक अशुद्धियॉ भी मिलती हैं। संभव है इसके मूल मे वृद्धावस्था या ऑखो की रोशनी की कमी रही हो।

(महू, २५ जुलाई १९६१)

शृंगार-शिरोमणि

'शृंगार-शिरोमणि' नामक ग्रथ की रचना ब्रजेश जी ने स १९७१ (सन् १९१४) मे की। यह नायिका भेद का ग्रथ है जिसमें नायिका के भेद-प्रभेदो का विस्तृत विवेचन है। स्थान स्थान पर ब्रजभाषा के उन आचार्य कवियो का भी उल्लेख है जिन्होंने साहित्य शास्त्र एव नायिका-भेद पर ग्रथ लिखे है जैसे मतिराम-पद्माकर आदि का। कहीं-कही उनके मतों का खण्डन भी किया गया है। गीतिकाव्य की परपरा भारतेंदु के बाद भी बहुत काल तक चलती रही इस बात को निश्चित रूप से प्रमाणित करने के लिए भावी सहित्यालोचकों को महाकवि ब्रजेश की काव्य-सृष्टि की शरण लेनी पडेगी। 'शृगार -शिरोमणि' के अतिरिक्त 'रस-रसाग-निर्णय' और अलकार-निर्णय' उनके दो अन्य रीतिग्रंथ हैं। ब्रजेश जी आचार, विचार, वेशभूषा आदि सभी दृष्टियों से रीतिकाल के सच्चे प्रतिनिधि से प्रतीत होते है। उनके रीति विवेचन की विशेषता इस बात मे है कि समस्त रीतिग्रथकारो (कृपाराम से हरिऔध तक) ने जहाँ रीति विवेचन पद्य मे किया है वहीं ब्रजेश जी ने पद्य के साथ-साथ गद्य का भी आधार ग्रहण किया है। यह विवेचन उन्होने 'वार्तिक' नाम से किया है काफी विस्तार से और खूब समझाकर व्याख्या करने की शैली एकदम प्राचीन है, स्थान-स्थान पर विवेचनगत उलझनों को दूर करने के लिए 'शका समाधान' वाली प्राचीन पद्धति का अनुसरण किया है-स्वय ही शका करते है और स्वय ही उसका समाधान।

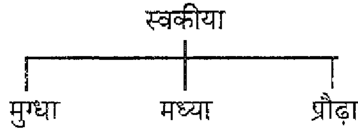
सर्वप्रथम युगलकिशोर श्री राधाकृष्ण की वदना है तत्पश्चात शृंगार रस के रूप रग देवता आदि का वर्णन है फिर शृगार रस का उदाहरण करते हुए उसका रस राजत्व सिद्ध किया गया है। तदनन्तर शृंगार रस के आलबन रूप मे नायिका और नायक की चर्चा है। पहले तो शुद्ध नायिका किसे कहते है इस प्रश्न की काफी विवेचना की गई , इसके बाद नायिका के नाना प्रकारो का निरूपण।

श्री ब्रजेश जी के अनुसार नायिका के विविध भेद इस प्रकार है

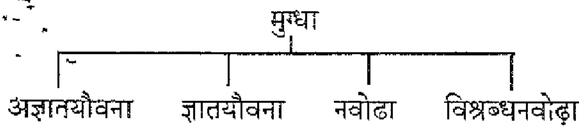
नायिका

स्वकीया परकीया गणिका

१. **स्वकीया** - वह नायिका जिसका मन अपने पति के प्रेम में लगा हो। इसके तीन भेद होते है -



मुग्धा - वह नायिका है जिसके अंगों में यौवन अकुरित हुआ दिखलाई पडे। इसके वर्णन मे शैशव का जाना और तरुणाई का आना वर्णित होता है। इसके चार भेद होते हैं -



अज्ञातयौवना - जिसके शरीर मे युवावस्था का शुभागमन हो रहा हो परन्तु उसे ज्ञान न हो।

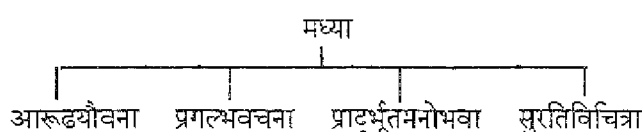
ज्ञातयौवना - जो अपने अंगो मे यौवन का आगमन समझने लगे। इस नायिका में कुछ लज्जा प्रकट हो जाती है। अज्ञात यौवना मे अज्ञानता के कारण लज्जा का अभाव होता है।

नवोढा - जो नायिका भय और लाज के कारण रतिक्रीडा नहीं पसद करती (जो भामिनि भय लाज सों रहे सुरति प्रतिकूल)

विश्रब्ध नवोढ़ा - वह नवोढा जिसके हृदय मे पति के सबध में कुछ प्रीति का भाव हो।

ब्रजेश जी ने मुग्धा के अन्य आचार्यो द्वारा किए गए चार नवीन भेदो नवलवधू, नवयौवना, नवलअनगा और लज्जाप्राया का भी उल्लेख किया है।

मध्या-नायिका मे काम और लज्जा समान रूप से विद्यमान रहती है। मध्या नायिका युवावस्था के कारण उन्मत्त सी रहती है। इसके चार भेद होते है -



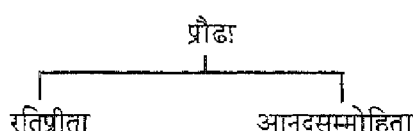
आरूढयौवना - जिस नायिका के अगों मे यौवन का पूर्ण विकास दिखलाई पडे और रूप रग की जिसमे विशेषता हो।

प्रगल्भवचना - जो अपने प्रियतम के साथ चतुरता से हँसे और बोले।

प्रादुर्भूतमनोभवा - जिस नायिका के अगो मे काम का नवीन उत्साह हो और जिसकी केलि-कला का वर्णन हो।

सुरतिविचित्रा - जो रतिक्रीडा मे विलक्षण हो।

प्रौढा - जो नायिका केलिकला में प्रवीण हो विपरीत रति मे प्रौढ हो, काम अधिक हो और लाज नाम मात्र को। इसके दो भेद होते हैं -

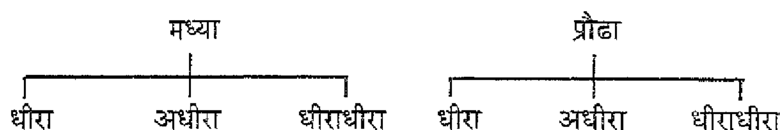




रतिप्रीता - जिस नायिका की रुचि रति में अधिक हो।

आनंदसम्मोहिता - जो रति के आनन्द में मोहित हो।

इसके अनतर ब्रजेश जी ने मुग्धा के तो नही किन्तु मध्या और प्रौढ़ा के तीन-तीन भेद और किए है। ये भेद नायिकाओ के 'मान' पर आधारित है - धीरा, अधीरा, ीराधीरा।

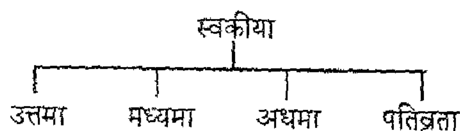


मध्या धीरा आदर तजै न कंत को करै व्यग सा कोप
मध्या अधीरा करै न पिय मनमान तिय प्रकट जनावै मान
मध्या धीराधीरा बैनन देत उराहनो नैननि मै भरि नार ।

प्रौढा धीरा - जो पति का आदर अधिक करे परन्तु मान के कारण केलिकला से उदास रहे ।
प्रौढा अधीरा - जो फूलो से मार-मार कर पति से मान जनावे ।
प्रौढा धीराधीरा - जो सुरति के समय रुखाई जनावे और पति को भयभीत करे ।

यही पर कवि ने मान की चर्चा भी कुछ विस्तार मे कर देना आवश्यक समझा है । उन्होंने मान का सक्षेप मे अभिप्राय समझा कर उसके तीन भेद भी बतला दिए है । मान निरूपण अत्यत आवश्यक नही था परन्तु कदाचित प्रासगिक आवश्यकता का ध्यान करके कवि ने उस पर भी यत्किंचित प्रकाश डाल दिया है । ब्रजेश जी के मतानुसार सपत्नियों के प्रति ईर्ष्या के कारण कभी कभी नायिकाओ के हृदय मे जो मनोभाव उदित होता है (जिसे रूठना कहते हैं) वही मान है , यह मान केवल स्वकीया में होता है परकीया और गणिका मे नहीं । जिस मान का मोचन मनाने से भी नहीं होता है वह रसाभास है- असाध्यस्तु रसा-भासो । मान तीन प्रकार का होता है - लघु, मध्यम और गुरु । साधारण हँसी खेल में जिसका मोचन हो जाता है वह लघु मान है । पति के विनयवचनो द्वारा जिसका मोचन होता है वह मध्यम मान है । प्रियतम के पैर पडने पर जो मिटता है वह गुरु मान कहलाता है । इसी मान विवेचन के प्रसंग में ब्रजेश जी ने एक अन्य प्रकार की नायिका 'मानवती' की भी चर्चा की है जो शुद्ध मानवती है । मानवती के मान और धीरादिकों के मान में उन्होने यह अंतर बताया है कि धीरादिको के मान का कारण प्रकट रहता है (यथा नायक के अगों मे रति चिन्ह आदि) जब कि मानवती में मान का कारण प्रकट नहीं होता ; मानवती में मान का होना और उसके मनाए जाने का ही वर्णन रहता है । दूसरे धीरादिक नायिकाएँ उलाहने देती हैं जबकि मानवती प्राय: मौन रहती है ।

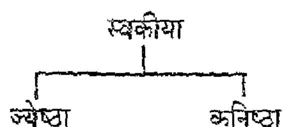
इसके अनंतर ब्रजेश जी ने स्वकीया के फिर चार भेद किए है :-



इनमे से प्रथम तीन भेद तो प्रेम और मान पर आधारित हैं तथा चौथा नेम या

नियम पर। ब्रजेश जी कहते है कि उत्तमा में लघु, मध्यमा मे मध्यम और अधमा में गुरु मान होता है तथा पतिव्रता वह नायिका है जो नेम-व्रत के सहित पति का सेवन करती है तथा जिसमे पति का हित हो उसे ही अपना धर्म समझती है।

इसी प्रकार जब एक व्यक्ति दो विवाह करता है तो उसके प्रेम के आधार पर भी नायिकाओं के दो और भेद हो जाते है · ज्येष्ठा, कनिष्ठा।



जो पति को अधिक प्यारी हो वह ज्येष्ठा और जो कम हो वह कनिष्ठा कहलाती है। ज्येष्ठा और कनिष्ठा मे आपस में द्वेष नहीं होता।

यहीं पर ब्रजेश जी ने आवश्यक समझकर सखी भेद वर्णन किया है क्योंकि स्वकीया नायिका के प्रसंग मे ही सखियो का वर्णन करना वे उचित समझते हैं, परकीया और गणिका के प्रसंग में दूतियों का वर्णन आता है। सखियाँ दम्पति के सग मे रह कर उनके इच्छानुसार कार्य करती है। ये दो प्रकार की होती हैं - १.अंतरंगिनी २.बहिरंगिनी। अंतरंगिनी सखियाँ दम्पति के हृदय की सभी बातों से परिचित रहती है। बहिरंगिनो इन बातों को नहीं जानतीं। सखियो के चार प्रकार के कार्य होते है (मडन, शिक्षा, उपालभ और परिहास) जिनके आधार पर उनका नामकरण किया गया है। नायिका को भूषण वस्त्रों से सज्जित करने वाली मंडन सखी कही जाती है, अनेक प्रकार के उपदेश करने वाली शिक्षा सखी है, दम्पति के प्रति अनेक उलाहने देने वाली उपालंभ सखी कहलाती है तथा नायक नायिका को जो हास्य से प्रसन्न करती है वह परिहास सखी है। इन सभी प्रकार की सखियो के उदाहरण दिए गए हैं। यहीं पर ७ बाहरी रतियों, १६ शृंगारों और बारह आभूषणो का वर्णन किया गया है।

बहिर्रति सात - आलिंगन, चुंबन, स्पर्श, मर्दन, नखदान, रदच्छद, अधरपान।

शृंगार सोलह - अगराग उबटन, दतमंजन, स्नान, वासवस्त्र, केश सज्जा, सिन्दूर, मस्तक चित्र, चिबुक तिल, महावर, मेंहदी, चन्दनालेप, तांबूल, स्वर्णाभूषण, काजल, कस्तूरबिंदु, पुष्पहार।

द्वादश आभूषण - शीशफूल, बेंदी, नाक में मोती, कर्णफूल, हार, कंठश्री, अंगद बजुल्ला, ककण, किंकिनी, आरसी, नूपुर, घुँघरू, बिछिया।

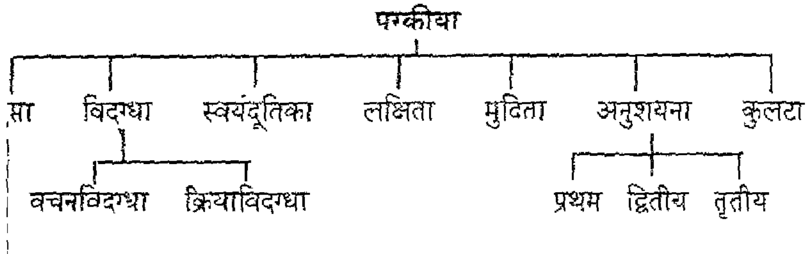
२. परकीया - जो नायिका छिपा करके परपुरुष से प्रीति करती है वह परकीया कहलाती है। परकीया दो प्रकार की होती हैं -



ऊढा - वह नायिका जो किसी पुरुष से विवाहित हो तथा किसी और से प्रीति करे।

भनूढ़ा - वह नायिका जो बिना ब्याहे ही किसी से (क्वाँरेपन में ही) प्रीति करे।

रकीया के और भी अन्य भेद किए गए है -



——भूत सुरतिसगोपना गुप्ता
—— वर्तमान सुरतिसगोपना गुप्ता
——भविष्य सुरतिसगोपना गुप्ता

प्ता

. **भूत सुरतिसंगोपना** - जो नायिका भई हुई रति को चतुराई से गोपन करे।

वर्तमान सुरतिसंगोपना गुप्ता - जो नायिका प्रत्यक्ष (या साक्षात) रति का गोपन करती है।

. **भविष्य सुरतिसंगोपना गुप्ता** - जो नायिका होने वाली रति को पहले से ही छिपाए।

वेदग्धा

. **वचन विदग्धा** - नायक से मिलने के लिए जो नायिका वचन रचना या वचन चातुरी से काम करे।

क्रिया विदग्धा -क्रिया चेष्टा से जो कार्य साधन करे।

स्वयदूतिका - जो नायिका अपने नए प्रमी से स्वयदूतत्व करे।

लक्षिता - जिस नायिका का पर पुरुष के प्रति गुप्त प्रेम सखी को ज्ञात हो जाए।

मुदिता - प्रिय से मिलने के लिए जो नायिका चितचाही बात को होता देखकर प्रसन्न हो।

अनुशयना

१ **प्रथम अनुशयना** - मित्र के मिलने का संकेत स्थल नष्ट हो गया हो या होने वाला हो ऐसा देख कर जो नायिका दुखी हो।

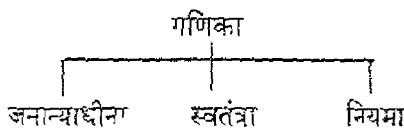
२ **द्वितीय अनुशयना** - संकेत स्थल को नष्ट हुआ देखकर जो नायिका इस चिंता में दुखी हो कि आगे ऐसा सकेतस्थल मिलेगा अथवा नही।

३ **तृतीय अनुशयना** - नायक संकेत स्थल पर पहुँच जाए परन्तु नायिका किसी कारणवश न पहुँच सकने के कारण दुखी हो।

कुलटा - वह नायिका जो अनेक व्यक्तियो से प्रेम करे।

अन्त में ब्रजेश जी ने अन्य ग्रंथो के मतानुसार परकीया के कतिपय अन्य भेदो उद्बुद्धा, उद्बोधिता, दुखसाध्या, सुखसाध्या का संक्षिप्त उल्लेख करके यह प्रकरण समाप्त किया है।

३ **गणिका** - जो नायिका धन के लिए किसी धनी पुरुष के साथ रमण करे तथा रूप रंग और रुचिवाली हो वह नृत्यगान मे प्रवीण हो वह गणिका कहलाती है। इनके तीन भेद होते है -



जनान्याधीना - जो जननी या अन्य कुटुंबियो की आज्ञा से किसी धनी पुरुष से धन लेकर रमण करती हो।



स्वतत्रा जो अपनी इच्छानुसार धन के लिए अनेक पुरुषो के साथ विहार करती हो

नियमा जो नायिका धन के लिए किसी धनी पुरुष के साथ हमेशा रहे

ब्रजेश जी ने यद्यपि नायिका भेद का शास्त्रीय विवेचन किया है परन्तु उन नायिकाओं को बार-बार निंदनीय कहा है जो अनेक पुरुषो से अनुराग करती हैं। वैसे वे स्वकीया की ही महत्ता स्वीकार करते है परन्तु वे प्रेम रस का परिपाक परकीया मे भी होते देखते हैं और कहते हैं कि परकीया में अधिक प्रेम होता है इस लिए ऐसी नायिकाओ का विशद निरूपण करते है। परकीया मे कुलटा का वर्णन करना उन्हे अच्छा नही लगता है तथा गणिकाओं मे से वे केवल नियमा का ही समर्थन करते हैं क्योंकि वह सदैव निकट रहने के कारण अनुरागवती हो जाती है जबकि और गणिकाओं मे रसाभास हो जाता है।

इसके आगे ब्रजेश जी ने गणिका-वर्णन के प्रसंग मे ही दूती और दूती भेद निरूपण किया है जैसे कि स्वकीया के प्रसंग मे सखी और सखी भेद का। उनके अनुसार वह स्त्री दूती कहलाती है जो नायक के समाचार नायिका से और नायिका की नायक से कहे तथा इस प्रकार के दूत कर्म में चतुर हो। दूती तीन प्रकार की होती हैं-उत्तम, मध्यम और अधम। उत्तम दूती वह होती है जो मीठी-मीठी बातें करके नायक नायिका के मन को धीरज दिलाती है। मध्यम दूती वह जो पहले कठोर बातें कहकर बाद मे कोमल वचन बोलती है तथा अधम दूती वह है जो रूखे वचन बोलकर नायक और नायिका के मिलन मे विलब कराती है। इन दूतियों के दो काम होते हैं - विरह निवेदन और सघट्टन अर्थात एक दूसरे का एक दूसरे से विरह व्यथा सूचित करना तथा एक दूसरे को रति सुख के लिए संघटित करना या मिलाना।

नायिका भेद निरूपण में पुन. प्रवृत्त होते हुए ब्रजेश जी ने नायिका के इन तीन भेदो के अन्य उपभेद इस प्रकार किए हैं .-

स्वकीया

गर्विता रूपगर्विता
प्रेम गर्विता
गुणगर्विता

अन्य सुरति दु खिता

परकीया

गर्विता रूपगर्विता
प्रेम गर्विता
गुणगर्विता

अन्य सुरति दु·खिता

गणिका

गर्विता रूपगर्विता
प्रेम गर्विता
गुणगर्विता

अन्य सुरति दु.खिता

स्वकीया, परकीया और गणिका के दो-दो भेद किए एक गर्विता दूसरा अन्य सुरति दु खिता (या अन्य सभोग दु·खिता)। गर्विता वह नायिका होती है जो गर्व करे। गर्विता के भी तीन भेद होते हैं। जिसे अपने रूप का गर्व हो वह रूप गर्विता, जिसे अपने प्रेम का गर्व हो वह प्रेम गर्विता और जिसे अपने गुण का गर्व हो वह गुणगर्विता। अन्य सुरति दु खिता वह नायिका है जो अपने प्रीतम की रति या रतिचिन्ह अन्य तरुणी में पाकर दुःखी हो, उलाहना दे और क्रोध करे। इस प्रकार नायिकाओं के गर्वितादि १२ भेद होते हैं। ये भेद किस आधार पर किए गए हैं यह नहीं बताया गया है।

फिर नायिकाओ के ग्यारह भेदो का उल्लेख करते हुए ५५ प्रकार की अन्य नायिकाओं का निरूपण हुआ है। स्वकीया के तीन भेद (मुग्धा, मध्या, प्रौढा) होते ही है। परकीया और गणिका मिलाकर पॉच मुख्य भेद हुए। इन पॉचो के ग्यारह-ग्यारह भेद फिर बताए। ये ग्यारह भेद इस प्रकार है-

१ प्रवत्स्यत्पतिका २ प्रोषितपतिका ३ आगमिष्यत्पतिका ४ आगतपतिका ५ वासकसज्जा ६ उत्कंठिता ७ खंडिता ८. कलहतरिता ९. अभिसारिका १० विप्रलब्धा ११. स्वाधीनपतिका। अभिसारिका को लेकर (मुग्धा, मध्या, प्रौढा और गणिका के तो नही) केवल परकीया के तीन भेद किए - दिवाभिसारिका, शुक्लाभिसारिका, कृष्णाभिसारिका। इस प्रकार से भेदो की कुल सख्या ५५ न होकर ५७ हो जाती है।

१. **[illegible]पतिका** - वह नायिका होती है जिसका पति परदेस जाने वाला हो।

२. **प्रोषितपतिका** - जिसका पति परदेस चला गया हो और जो नायिका विरह से व्याकुल हो।

३ **आगमिष्यतपतिका** - जिसका पति परदेस से आने वाला हो।

४. **आगतपतिका** - जिसका पति परदेस से आ गया हो।

५. **वासकसज्जा** - जो पति के शुभागमन से शृंगारशय्या सुसज्जित करे या सखियो से करावे।

६. **उत्कंठिता** - वह नायिका है जो इस प्रकार सोचे कि प्रियतम आ तो गया परन्तु मेरे पास नही आया, कहाँ रह गया आदि।

७. **खंडिता** - जिसका नायक सौतों के घर से रतिचिन्हो सहित आया हो।

८. **कल्हंतरिता** - वह नायिका है जो पति का पहले अपमान करे और संतप्त होकर पीछे पछताए।

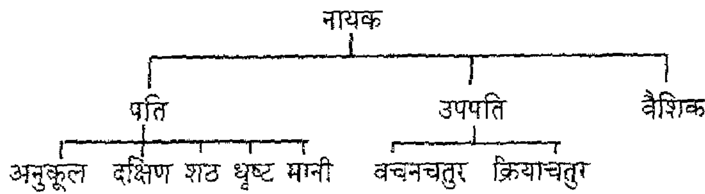
९. **अभिसारिका** - वह नायिका है जो प्रियतम से मिलने के लिए स्वय जाए या नायक को सखी द्वारा अपने पास बुलाए। इसमे प्राय नायिका का ही गमन वर्णित होता है। इसके तीन भेद होते है - दिवाभिसारिका, शुक्लाभिसारिका, कृष्णाभिसारिका।

१०. **विप्रलब्धा** - जो पति से मिलने के लिए केलिस्थान मे जाए और उसके न मिलने पर दु.खी होकर पछताए।

११ **स्वाधीनपतिका** - वह नायिका है जिसके अधीन होकर नायक रहे। अधीन होने का भाव यह है कि उसका शृंगार करे, मधुर वचनो द्वारा उसे प्रसन्न रखे आदि।

नायिका भेद निरूपण यहाँ समाप्त होता है। इसके अनतर ब्रजेश जी ने नायक भेद वर्णन किया है। वह व्यक्ति नायक है जो रूप की राशि हो, स्त्रियो को प्रिय लगने वाला हो और मोहित करने वाला हो, रसज्ञ हो, सगीत आदि का प्रेमी हो तथा धन और ऐश्वर्यवान हो। ब्रजेश जी ने यहाँ पर यह भी अनुभव किया है कि 'नायिका श्री राधा महारानी और नायक श्री कृष्णचन्द्र। इनके अतिरिक्त अन्य स्त्री पुरुषो मे नायिका नायक के लक्षण नहीं घट सकते।'

नायक के भेद इस प्रकार दिए गए हैं -

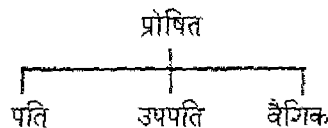


पति - वह नायक जिसका वेद-विधि मे विवाह हुआ हो और जो विवाहिता से प्रेम करे। पति नायक के चार भेद होते है। अनुकूल, दक्षिण, शठ, धृष्ट। अनुकूल जिस पुरुष की एक ही विवाहिता हो और जो उसी से प्रेम करे। दक्षिण वह है जिसकी अनेक विवाहिता हो और जो सबसे समान प्रीति करे। शठ जो सौतो के साथ रमण करे और दूसरी विवाहिताओं से मीठी-मीठी बाते करे। धृष्ट वह नायक होता है जो अपने अपराधो पर ध्यान नही देता, स्त्रियो के कडुए वचन भी सुनता है और जिसे गाली मार की भी परवाह नहीं। एक मानी नायक का भी ब्रजेश जी ने यहीं पर अलग से उल्लेख किया है। इसकी परिभाषा उन्होंने इस प्रकार से दी है 'मान करे निज नारि सों सहि अनेक अपमान'। इस नायक मे मान की प्रधानता बतलाई गई है। यह ब्रजेश जी का किया हुआ नवीन भेद है जिसे पति नायक के अंतर्गत उन्होंने स्थान दिया है।

उपपति - जो नायक पुरजनों या गुरुजनों से छिपाकर पर स्त्री से प्रेम करे वह उपपति कहलाता है। उसके दो भेद होते हैं - १. वचन चतुर २. क्रिया चतुर। जो नायक वचन चातुरी से अपना कार्य साधन करता है वह वचन चतुर और जो क्रिया चातुरी द्वारा अपना कार्य साधन करता है वह क्रिया चतुर।

वैशिक - जो नायक धन देकर गणिका से प्रेम करे तथा गुणी और गायक हो वह वैशिक नायक कहलाता है।

वियोग की स्थिति में पडे हुए नायक को लेकर ब्रजेश जी ने एक प्रकार के और नायक का निरूपण किया है - प्रोषित नायक। प्रोषित नायक उनके मतानुसार वह नायक है जो परदेस मे रहकर बिना नायिका के व्याकुल हो। प्रोषित नायक भी तीन प्रकार के हुए - १ पति प्रेषित २. उपपति प्रोषित ३. वैशिक





ब्रजेश जी ने पद्माकर का उल्लेख करते हुए अनभिज्ञ नायक का भी जिक्र किया

है पर उसे नायक मानना उन्हे स्वत स्वीकार नही

सखागणो का जो वर्णन काव्यशास्त्राचार्यो ने किया है उमे ब्रजेश जी अनुचित समझते हैं इसीलिए उन्होंने सखाओ (पीठमर्द, बिट, चेट, विदूषक आदि) का वर्णन नही किया है ।

इसके अनतर ब्रजेश जी ने आलबन विभावान्तर्गत चार प्रकार के दर्शनो का वर्णन किया है - १ श्रवण दर्शन २ चित्र दर्शन ३ स्वप्न दर्शन ४ प्रत्यक्ष दर्शन । इनके लक्षण नाम से ही स्पष्ट हैं । इसके संबध मे ब्रजेश जी कहते है कि ये उद्दीपन ऐसे प्रकट होते हैं परन्तु इन्हे आलबन समझना चाहिए ।

'यद्यपि उद्दीपन सरिस, पै आलंबन मानि ।'

यही पर ब्रजेश जी ने विभावान्तर्गत आलबन और उद्दीपन दोनो का स्पष्टीकरण विवेचन और उदाहरण प्रस्तुत किया है तथा आलबन के भी दो भेद बताएँ हैं - १. विषयालबन २. आश्रयालबन । 'आलंबन वह है जिसके हृदय मे स्थायी भाव स्थिर हुआ है और उद्दीपन वह है जिसको देखकर अथवा सुनकर स्थायी भाव उद्दीप्त हुआ हो । . . .आलंबन दो प्रकार का होता है, एक आश्रयालबन दूसरा विषयालंबन । आश्रयालबन वह है जिसमें स्थायी भाव स्थिर हुआ हो और विषयालबन दूसरा व्यक्ति है जो उद्दीपन विषय का आलबन से अर्थात जिसमें उद्दीपन प्रकट होते हो ।' अपनी अल्पसमर्थ गद्यशैली के कारण यहॉ आलबन के इस द्विविध रूप को ब्रजेश जी पूर्ण रूपेण समझा नही पाए हैं किन्तु जितना कुछ भी विवेचन है उससे उनका आशय अवश्य व्यक्त हो जाता है और उनका वह आशय ठीक है । आगे शृगार रस के उद्दीपनो का वर्णन है जैसे चन्द्रोदय अथवा ऋतु । ऋतु वर्णन करते हुए षटऋतुओ का वर्णन पृथक पृथक किया गया है - वसंत, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमत और शिशिर । अत मे फाग का भी वर्णन है । प्रत्येक ऋतु के वर्णन के पूर्व लक्षण भी समझाए गए है तदनंतर ग्रथ समाप्त होता है ।

(१९६४-६५)



रस-रसाग-निर्णय

महाकवि ब्रजेश रचित 'रस-रसांग-निर्णय' नामक अप्रकाशित ग्रथ मे 'रस' का विवेचन किया गया है। स्वय कवि का कथन है कि रस सम्बधी सभी प्राचीन काल मे उठाए गए विवादो का इसमे निर्णय कर दिया गया है। कवि ने साहित्यशास्त्र का सम्यक अध्ययन करने के अनतर यह ग्रथ लिखा है -

'ग्रंथ अनेकन मंथि करि पंथ अनेकन मंथि।
सुरझावत वहु दिनन की उरझी रस गुनग्रंथि ॥'
(द्वितीय तरंग)

यह ग्रथ शंका-समाधान पद्धति पर लिखा गया है इसमे शका करने वाले सजनेश कवि है जो श्री ब्रजेश के शिष्य एव भतीजे है। कवि ने पद्य के अतिरिक्त विषय को स्पष्ट करने के उद्देश्य से खडी बोली गद्य मे वार्तिक लिखा है। हिन्दी के प्राचीन रीति कवियो ने एक तो विषय को स्पष्ट रूप से विवेचित करने की चेष्टा नही की दूसरे पद्य मे ही सब कुछ लिखा है। व्याख्या के लिए पद्य-शैली उपयुक्त नही, इस बात का अनुभव करते हुए प्रस्तुत ग्रथ मे कवि ने गद्य का समावेश किया है। यह ग्रथ ब्रजेश जी ने अपने आश्रयदाता ओरछा नरेश महाराज वीरसिह देव को प्रसन्न करने के उद्देश्य से लिखा जैसा कि नीचे लिखे दोहे से स्पष्ट हैं-

प्रथमहिं कछु शंका करत समाधान करि देत।
रस-रसांग-निर्णय रचत वीरविनोद निकेत ॥

यहॉ वीर शब्द महाराज वरसिह देव के लिए ही आया है। राज्याश्रित कवि बहुत काल से ऐसा ही करते आए हैं। आचार्य केशवदास ने भी अपने आश्रयदाता महाराज इन्द्रजीतसिह की इच्छा पूर्ति के लिए 'रसिकप्रिया' की रचना की थी।

इस ग्रथ की दूसरी विशेषता यह है कि इसमे नायिकाभेद का विस्तार पूर्वक वर्णन-विवेचन नही किया गया है। रीतिकाल के अनेकानेक रस ग्रथ 'रसिकप्रिया', 'ललित ललाम' आदि रस का विशद विवेचन प्रस्तुत न कर नायिका भेद का सविस्तार निरूपण करने वाले हो गए है। सच तो यह है कि रस-विवेचन करते हुए सैकडो प्रकार की नायिकाओ के लक्षण उदाहरण द्वारा भेद गिनाना विषयातर करना है, एक तो रस विवेचन के अन्तर्गत नायिका-विवेचन का उतना महत्व नही दूसरे यदि परम्परागत रूप से 'नायिका भेद' को प्रधानता दी भी जा चुकी है तो भी उसका विवेचन पृथक ग्रथ मे ही किया जाना चाहिए। आचार्य ब्रजेश ने इस तत्व की बात को भली भॉति हृदयगम कर प्रस्तुत

रचना को रस-विवेचन तक ही सीमित रखा है। नायिका भेद पर आपने 'शृंगार-शिरोमणि' नामक एक दूसरा ग्रथ लिखा है।

रस-रसाग-निर्णय मे १३ तरंग है। प्रथम तरग मे 'राजश्री भूषण वर्णन' किया गया है। प्रारंभ के दो छन्दों में गणेश जी की वदना है उसके बाद यह दोहा-

> गाय गौरि के गुन विमल ध्याय मनाय महेश।
> रस-रसांग-निर्णय रचत काव्याचार्य ब्रजेश ॥

इसके बाद कवि लिखता है कि जबूद्वीप मे ओरछा नाम का नगर प्रसिद्ध है जहाँ भानुवश के बुदेला क्षत्रिय आज भी राज्य करते हैं (आज का तात्पर्य है स १९९३ जो कि प्रस्तुत ग्रथ का रचनाकाल है न कि स २०११), इस वश मे यशस्वी मधुकरशाह प्रकट हुए थे जिन्होंने बादशाह अकबर की आज्ञा का उल्लघन करते हुए अपने मस्तक पर तिलक लगाकर बुन्देला आन की रक्षा की थी। उसी वंश में श्री महाराज वीरसिहदेव प्रकट हुए है। तदनतर कवि ने बुदेला कुल की विशेषता का वर्णन करते हुए महाराज वीरसिहदेव, महारानी तथा उनके पुत्र महाराज कुमार देवेन्द्र के गुणो का वर्णन किया है और आगे चलकर कवि ने महाराज के राजमहल, राजनगर, वन, उपवन, गयद, तुरग, कृपाण, आतक आखेट, सेनापति, राजबधु, युवराज देवेन्द्र का विवाह, सभासद, फाग, होली, आदि का वर्णन है। इन वर्णनो मे ओरछा नरेश की वीरता, धाक, प्रताप, ऐश्वर्य और समृद्धि, दानशीलता गुणग्राहकता, रसज्ञता, धर्मवृत्ति आदि की छाप पाठक के मन पर पडती है। अंत मे यह वृद्ध कवि अपना आशीर्वाद देकर यह तरग समाप्त करता है -

> आशिष देत महाकवि अब आनंद समेत।
> श्री महेन्द्रमणि वीर की कीरति सरसै स्वेत ॥

द्वितीय तरग मे 'रस-निरूपण' किया गया है। इस तरंग के आरभ मे कवि ने राधा और राधारमण का वर्णन किया है। प्राय सभी रीतिकवियो ने अपने रस ग्रथो के आरभ में राधाकृष्ण की वंदना की है।

केशव को देखिए -

> श्री वृषभानु कुमारि हेतु शृंगार रूप मय।
> कहि केशव से रसिक जन नवरस में ब्रजराज नित ॥
> तातें रुचि शुचि शोच पचि कीजे सरस कवित्त ।
> केशव श्याम सुजान को सुनत होइ बस चित्त ॥
>
> (रसिकप्रिया)

मतिराम को देखिए -

बरनि नायका नायकनि रच्यो ग्रंथ मतिराम ।
लीला राधारमन की सुन्दर जस अभिराम ।।

(रसराज)

मो मन तम तोमहि हरौ राधा को मुखचंद ।
बढ़ै जाहि लखि सिंधु लौं नंदनन्दन आनन्द ।।
मुन्ज गुन्ज क हार उर मुकुट मोर पर पुन्ज ।
कुन्ज विहारी बिहरियै मेरेई मन कुन्ज ।।

(मतिराम सतसई)

बिहारी लिखते है -

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाँई परै स्याम हरितदुति होइ ।।

(सतसई)

भिखारीदास -

आगे के सुकवि रीझिहैं तो कविताई न तो
राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है ।

(काव्य निर्णय)

ब्रजेश जी की वन्दना इस प्रकार है -

श्री राधा राधारमन बाधा हरन हमेश ।
बंदि तिन्हैं विधि सो विमल विरचत ग्रंथ ब्रजेश ।।

सर्वप्रथम श्री ब्रजेश ने दो प्राचीन आचार्यो द्वारा निरूपित काव्य लक्षणो को अपने दोहो मे अवतरित किया है फिर उनका खण्डन किया है और अत मे काव्य के सबध मे अपना मत स्थापित किया है । पहले आचार्य मम्मट की परिभाषा दी गई है -

शब्द अर्थ दूषन रहित भूषन सहित लखाय ।
सरस सगुन तेहि वाक्य को काव्य कहत कविराय ।।

इस परिभाषा का खण्डन करते हुए ब्रजेश जी ने लिखा है - 'शब्दार्थ दूषन विहीन होना बहुत ही कठिन है क्योकि साधारण स्थूल दूषणो से वाक्यार्थ चाहे निर्दोष भी हो परन्तु विचार करने पर सूक्ष्मतर दूषणों से रहित वाक्यार्थ नही हो सकता पुन: अलकार से विहीन भी वाक्य होता है । वाक्य रसहीन भी होता है तब काव्य का लक्षण यह कैसे शुद्ध हो सकता है' इसके बाद ब्रजेश जी ने अपने पूर्वज आचार्य विश्वनाथ का मत उद्धृत किया है -

केवल रसमय वाक्य को काव्य कहत बुध कोय ।
मम पूर्वज विशुनाथ को यह मत जानहु सोय ।।

। उसका भी खडन किया है । वे कहते हैं - 'यद्यपि सतकवियो का वाक्य रसहीन होता तथापि कहीं पर नीरस वाक्य बहुत ही दृढ होता है । केवल रसात्मक वाक्य काव्य मानना यह उचित नही है क्यो कि वाक्य मे कदाचित काव्य के अलकारादिक वर्तमान हैं, एक रस नहीं है तो क्या वह वाक्य काव्य नही हो सकता और भी अनेक ा ऐसे है जिनमें नवरसान्तर्गत कोई भी रस नहीं है परन्तु काव्य के अलकारादिक सब पाए जाते है तब वह वाक्य काव्य कैसे नहीं हो सकता । ऐसा विचार रखते ब्रजेश जी ने स्वत कुछ उदाहरण ऐसे दिए हैं जिनमें रस का अभाव होने पर भी त्व का लोप नहीं कहा जा सकता -

चोंच रही गहि सारसी सारस हीन मृनाल ।
प्राण जात जनु छार मैं दियो अरगला डाल ।।
बोलत विहँग विनोदयुत निकसत वारिज गोत ।
अनुदिन अरुन उदोत लखि सुखी सबै जग होत ।।

इस प्रकार कुछ प्राचीन आचार्यो की काव्य-विषयक मान्यताओ का दोष दर्शन हुए ब्रजेश जी ने काव्य के सबध मे अपना मन इस प्रकार व्यक्त किया है -

वाक्य प्रवीन कवीन को रचनायुत अति चारु ।
काव्य कहत हैं ताहि कवि मेरो मत मन हारु ।।

पश्चात कवि का लक्षण बतलाया है -

काव्यशास्त्र मैं कुशल अति देश कोश को ज्ञान ।
वाक्य विमल रचना कलित सो कवि कला निधान ।।

फेर रस निरूपण किया गया है ।

रस निरूपण करते हुए ब्रजेश जी ने लिखा है कि प्राचीन आचार्यो ने रस को स्वरूप बतलाया है किंतु मुझे यह मत स्वीकार नहीं । उन्होने रस की आनंदवत्ता इ किया है-

करुणा रौद्र भयानकहु वीभत्सादि ब्रजेश ।
ये यथार्थ दुःखरूप हैं सुख को कतहुँ न लेश ।।

यह शका नि सदेह प्रबल है। वे लिखते हैं - "रस आनन्द स्वरूप नही हो सकता। ससार में परमात्मा के अतिरिक्त कोई वस्तु आनन्दस्वरूप नहीं हो सकती। आनदस्वरूप उसको कहना चाहिए जो सबको समान आनदप्रद हो, अस्तु ईश्वर। रसो मे सबको समान आनंद नही हो सकता। जैसे शृंगारी पुरुषो को शृंगार रचना सुखप्रद है परन्तु विरागियो को नही। ऐसे ही शात रस की रचना से अथवा वीभत्स रस की रचना से विरागियो को आनद है परन्तु शृगारियो को नही। अतएव रस आनद नहीं है।" अपना मत इस प्रकार प्रकट करते हुए ब्रजेश जी ने प्राचीन आचार्यों के रस को आनदस्वरूप मानने के कारणो का भी उल्लेख किया है। वे कहते है कि रस दो प्रकार का होता है। एक प्रपचात्मक और दूसरा रचनात्मक। प्रपचात्मक रस वह है जो ब्रह्म-रचित है सम्पूर्ण ससार मे व्याप्त है, कभी क्रोध, कभी विराग, कभी अनुराग प्रकट किया करता है। बस यही प्रपचात्मक रस है, इसी प्रपचात्मक रस को कविजन जब रचना में सयोजित करते है तब रचनात्मक रस होता है। प्रपचात्मक रस मे सुख-दुख सभी प्रकट होते है। परन्तु रचनात्मक रस आनन्द ही मय है चाहे करुण रस की रचना हो चाहे वीभत्स रस की रचना हो श्रवण करने मे एक प्रकार का आनद ही प्रकट होता है। यद्यपि रस आनन्दप्रद नहीं है पर वे रचना मे होने मे आनदरूप हो जाता है। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने इस प्रकार से रस को आनद स्वरूप माना है। रस ब्रह्म है (रसौ वै स:) की भी थोडी सी चर्चा करते हुए ब्रजेश जी लिखते है कि जैसे साकार ब्रह्म के दस अवतार है ऐसे ही रस के भी दस अवतार है -

१.	श्री कृष्णचन्द्र जी	शृंगार रस
२.	श्री रामचन्द्र जी	वीर रस
३.	श्री परशुराम जी	रौद्र रस
४.	श्री वामन जी	[illegible]
५.	श्री नृसिंह जी	[illegible]
६.	श्री वाराह जी	[illegible]
७	श्री मत्स्य भगवान	[illegible]
८.	श्री कच्छप जी	[illegible]
९.	श्री वौध जी	[illegible]
१०	श्री कल्कि भगवान	[illegible]

यथार्थ रस निरूपण कर ... मानस का
अतर स्पष्ट किया है - 'मानसा ... मन में जो
विकार प्रकट होते है सत्कवि ...
दय में स्थिर नही होता तब तक

भाव कहा जाता है। फिर विभाव (आलबन, उद्दीपन) सचारी भाव तथा अनुभाव का परिचय कराते हुए रस की परिभाषा इस प्रकार से दी गई है -

'उद्दीपन आदि कारणो से स्थिर हुआ हृदय का भाव वर्धित होकर जब मन को ससार से आकर्षित करके अपने मे आसक्त कर लेता है मनुष्य को मन का ध्यान नही रह जाता तब वही स्थायी भाव रस होता है।'

इस प्रकार ब्रजेश जी का जो रस-निरूपण है स्पष्ट और सुलझा हुआ है, उन्होने स्वय शका करते हुए तार्किक रीति से विषय की विवेचना की है। उनका ग्रथ इसीलिए हिन्दी के पूर्ववर्ती आचार्यो की अपेक्षा अधिक प्रौढ जान पडता है, लक्षणो मे कोई भ्राति नही आने पाई है।

'तृतीय तरंग' मे भावभेद वर्णन किया गया है। एक बार ब्रजेश जी ने स्थायी भाव विभावादिको की चर्चा की है अधिक विशद रूप मे उदाहरणो के साथ। इसी प्रसग मे सक्षेप मे अनुभाव और विभाव का बडा ही स्पष्ट विश्लेषण हुआ है - 'अनुभाव रस को बोध कराने वाले कार्य रूप होते है, अंगों मे प्रकट दिखलाई देते हैं जिनसे रस का ज्ञान होता है। विभाव कारण हैं अनुभाव कारज हैं, फिर कहा गया है -

हाव विभावरू भाव थिर चर भावहु अनुभाव।
पॉच भाव मिलि होत रस वर्णत सब कविराव।।

इसके बाद रस के दस प्रकारो तथा उनके दस स्थायी भावो की चर्चा है। आचार्य ब्रजेश ने दशम् रस वात्सल्य माना है जिसका स्थायी भाव है सुतविषयक अनुराग।

रस की चर्चा करते हुए यहॉ पर ब्रजेश जी ने रस को काव्य मे प्रधान वस्तु स्वीकार किया है। यहीं पर उन्होंने अपने पूर्वज विश्वनाथ जी का मत (वाक्यं रसात्मक काव्यं) उद्धृत करते हुए कहा है - 'यद्यपि इस लक्षण का प्रथम हमने कुछ खडन किया है तथापि पीछे समर्थन भी किया है। एक महान आचार्य का मत हमारे खडन से खंडित नही हो सकता केवल बुद्धि की चमत्कृती दिखलाने का हेतु समझिये, यथार्थ रसपूर्ण वाक्य ही काव्य है।' ऐसा लिख कर ब्रजेश जी ने अपनी मानसिकता दुर्बलता का ही परिचय दिया है। इस कथन के आधार पर उनका खंडन, खंडन न मानकर बौद्धिक चमत्कार ही माना जाएगा। आचार्य केशवदास जी की अपेक्षा ब्रजेश जी का विवेचन अधिक श्रेष्ठ, प्रौढ़ और निर्भान्त है किंतु आत्मविश्वास की ऐसी कमी केशवदास जी मे नहीं। उनका काव्य उनके काव्यादर्श का सुदर आदर्श है।

'काव्य में रस जीव है या व्यग्य' इस समस्या पर भी लेखक ने चमत्कार विधायिनी शैली मे पहले तो इस प्रकार लिखा है - 'जीव ईश्वराश है जिसका कोई रग-रूप नहीं है परन्तु सत्कवियो ने तो रस का रूप-रंग लिखा है तब रस जीव कैसे हो सकता है ? प्राचीन

मतानुसार काव्य मे व्यंग्य ही जीव है क्योंकि जीव निराकार है तो व्यग्य का भी कोई आकार नही है' किंतु आगे वे रस और व्यग्य में भेद नही मानते। इस सम्बध मे उनके तर्क इस प्रकार है - 'विवक्षित वाच्यध्वनि के भेद मे असलक्ष्यक्रम ध्वनि रस व्यग्य, आचार्यों ने यहाँ पर केवल रस को ध्वनि माना है। सपूर्ण भाव भेद रसभेद रसापरांगो मे असलक्ष्यक्रम ध्वनि से रस व्यग्य समझिए। अतएव रस और व्यग्य मे भेद नहीं है। जैसे व्यग्य शब्दार्थ नही है ऐसे ही रस भी शब्दार्थ नही है। दोनो शब्दार्थ परे है। दोनो एक ही है, दोनो जीव है ब्रह्मानद के समान अनिर्वचनीय रसानद है यद्यपि प्राचीन सत्कवियों ने रस का रग रूप वर्णन किया है परन्तु यह कवि कल्पित प्रौढोक्ति है वास्तव मे रस का कोई रग रूप नहीं है। हृदय मे प्रकट होने वाली वस्तु का क्या रग रूप हो सकता है ? 'ब्रह्म ही के समान रस आनदस्वरूप है' इसके बाद भावभेद तथा अपराग का वर्णन आता है। भाव के छ भेद बताए गए है। १. भावोदय २ भावसधि ३ भावशवलता ४ भावशांति ५. भावाभास ६ रसाभास तथा इसके सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किए गए है। रसाभास को छोडकर अन्य भावभेदो का विवेचन पूर्ववर्ती आचार्यों के ही समान हुआ है पर रसाभास के सबध मे अन्य आचार्यो का मत है कि 'जब रस अनौचित्य रूप से व्यजित होता है तब उसे रसाभास कहते है।' इस मत का उल्लेख करते हुए ब्रजेश जी इसे अस्वीकार करते है और कहते हैं कि 'अपूर्ण रस होने से रसाभास होना चाहिए, क्यो कि अन्य आचार्यो द्वारा दिए गए लक्षण के अनुसार परकीया मात्र मे रसाभास होता है किंतु उनका ऐसा मानना श्रेष्ठ नही है क्यो कि साहित्यशास्त्र कोई धर्मशास्त्र नही है जो उचित अनुचित का विचार किया जाए। शृगार रस की पूर्णता देखनी चाहिए। हम समझते हैं कि स्वकीया से अधिक प्रेम परकीया मे पाया जाता है। शृगार रस की पूर्णता में किसी प्रकार की त्रुटि नही दिखलाई पडती तब रसाभास कैसा। हॉ कुलटा मे तथा गणिका में रसाभास मानते है क्योंकि अधिक मित्र होने के कारण कुलटा का हृदय निष्प्रेम हो जाता है। रसाभास के सम्बध में एक बडी सुंदर शका ब्रजेश जी ने उठाई है और वह यह है कि आचार्यो ने रसाभास को भावभेद मे क्यो रखा है. रसभेद मे क्यो नही रखा ? इसके बाद स्वत सतोषजनक समाधान भी किया है। 'भाव की लघुमात्रा है। जब रस आभास रह गया तब उसकी भी लघुमात्रा हो गई, रस भाव के समान हो गया।' साहित्यशास्त्र के विषय को लेकर ब्रजभाषा रीतिशास्त्रो में ऐसी सूक्ष्म विवेचना करने वाले आचार्य पहले नही हुए। यदि रहे भी हो तो उनके ग्रथों से ऐसा अवगत नहीं होता। जैसा कह चुके हैं संभव है गद्य के मिश्रण से प्रस्तुत ग्रंथ मे यह विशेषता आ गई हो किंतु ब्रजेश जी की अतर्दृष्टि तो अस्वीकार नहीं की जा सकती।

इसके बाद ब्रजेश जी ने अपरांग व्यंग की विवेचना की है तथा उसके ७ भेदो - १. रसवत २. प्रेया ३. ऊर्जस्वी ४ समाहिता ५. भावोदयवत ६ भावसधिवत ७ भावसबलवत का निरूपण किया है। सभी के लक्षण और उदाहरण स्पष्ट और उपयुक्त

है। यह भी बतलाया गया है कि लक्षण किस प्रकार उदाहरण पर घटित होता है। इस प्रकार ग्रंथ को सम्यक और ग्राह्य बनाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। अपराग की विवेचना उन्होंने इस प्रकार की है - 'रस का और भाव का जहाँ अंगांगी भाव वर्णन होता है अर्थात् कहीं रस का अंग भाव, कहीं भाव का अंग रस, कहीं भाव का अंग भाव होता है, वहाँ पर अपराग समझिए। अंगी प्रधान और अंग अप्रधान होता है। अंगी कारण और अंग कार्य होता है।

आगे कवि रसभेदों का वर्णन करता है किंतु रसभेदों की चर्चा करने के पूर्व एक बार फिर स्थायी भाव, भाव, विभवादिकों की चर्चा छोड बैठता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि यह निश्चय नहीं कर पाया कि किस स्थान विशेष पर इसकी एक बार पूरी विवेचना कर दी जाए। इसीलिए जहाँ भी थोड़ी आवश्यकता प्रतीत हुई है यह प्रसंग स्पष्ट कर दिया गया है। यही पर एक व्यर्थ की शंका का समाधान करने में ब्रजेश जी लग गए हैं। आलंबन की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं कि कुछ कविजन दशरथ के मृतक शरीर को करुण रस का आलंबन मानते है। इस प्रकार से कवियो का खंडन करते हुए वे प्रश्न करते हैं 'शोक कहाँ है ? मृतक शरीर में या अवध निवासियों के हृदय में ? शोक का पूरा-पूरा स्वरूप कुटुबीजनो मे तथा अवध निवासियों के हृदय में है और यही सब करुण रस के आलबन हैं जो व्याकुल हो रहे हैं। जहाँ रस होता है वहीं सब अनुभाव होते है और वही सब रस के आलंबन है।' यह खडन वास्तव में ठीक नहीं और न रस की ब्रजेश जी द्वारा बताई गई प्रतिक्रिया ही ठीक है। स्थायीभाव प्राणिमात्र में होता है तथा रस का भोक्ता भी प्राणिमात्र होता है पर स्थायी भाव को जाग्रत करने वाले और उद्दीप्त करने वाले विभावों (कारणों) की भी स्थिति मानव हृदय में मानना ठीक नहीं। हम जिस वस्तु को देखकर दु:खी या सुखी होंगे दूसरे शब्दों मे जिन कारणों से हमारे मन में स्थित कोई भी भाव जगता और उत्तेजना पाता है वे निश्चय ही हमारे हृदय से अतिरिक्त कोई बाह्य पदार्थ होंगे। ठीक है शोक की भावना जागेगी अवध निवासियों में, कुटुबीजनों में तथा काव्य पाठकों में लेकिन दशरथ का मृतक शरीर तो इन सबके हृदयगत स्थायी भावो को जगाने का कारण स्वरूप होने से आलंबन कहा ही जाएगा। 'मृतक शरीर' में 'शोक' होने की कल्पना ही भ्रामक है। आगे जैसे अपनी ही व्याख्या से संतुष्ट न होकर ब्रजेश जी कुछ अन्य आचार्यों का इस संबंध मे नया मत उद्धृत कर आगे बढ़ चलते हैं। कुछ आचार्यों ने दो प्रकार के आलंबन लिखे हैं। एक आश्रयालंबन और दूसरा विषयालंबन। आश्रयालंबन वह है जिसमें रस स्थिर होकर अनुभवित हो और विषयालंबन वह है जिसके उद्दीपन विषय दिखलाई पडते हों। इस नियम से अवध निवासी आश्रयालंबन हैं और मृतक शरीर विषयालबन है। उद्दीपन विभाव भी इसी प्रकार गलत समझाया गया है। वास्तव मे उद्दीपन विभाव उन कारणो को कहते है जिनसे जगे हुए स्थायी भाव को उत्तेजना प्राप्त हुआ करती है तथा जिनकी उत्तेजना के बिना रसोद्रेक संभव ही नहीं। 'उद्दीपक पदार्थ

स्थायी भाव के उत्पादक कारण नही, केवल उद्दीपक हैं, उत्पन्न स्थायी भाव को इनके द्वारा यदि उत्तेजना न मिले तो वह अनुत्पन्न के समान ही है जैसे उत्पन्न अकुर को जल न मिलने से वह नष्ट हो जाता है। उद्दीपन विभाव भी प्रत्येक रस के भिन्न-भिन्न होते है। किंतु ब्रजेश जी का उद्दीपन विभाव यो है -

जिन्हें श्रवन करि कै निरखि भाव हिये थिर होय।
जानहु थायी भाव के उद्दीपन हैं सोय ।।

जिसका वार्तिक उन्होने इस प्रकार दिया है - 'जिनको श्रवन करके अथवा देखकर भाव हृदय में स्थिर होता है या जाग्रत होता है, वर्धित होता है वही सब उद्दीपन विभाव हे, मानो स्थिर होना, जाग्रत होना और वर्धित होना एक ही बात है। लक्षण की यह भ्राति उदाहरणों में नही आने पायी है। उदाहरण वास्तविक उद्दीपन विभाव के ही हैं। दसो रसो के उद्दीपन अलग-अलग बतलाए गए है।

पंचम तरग मे स्थायी भाव की विस्तृत चर्चा है। 'भाव जबै थिर होत उर रस अनुकूल ब्रजेश।' इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है - 'रस के अनुकूल हृदय मे भाव स्थिर हो जाने से स्थाई भाव होता है। स्थिर होने के कारण उद्दीपन विभाव है अर्थात स्थायी भाव के कारण से ही उद्दीपन विभाव की आवश्यकता पडती है। रस के अंगों में स्थायी भाव मुख्य हैं बल्कि स्थायी भाव को रय का बीज समझिए, अब शका और समाधान देखिए -

शंका

'भाव से स्थायी भाव होता है, तब साहित्याचार्यो के भाव को रस का बीज क्यो नहीं माना, स्थायी भाव को रस का बीज क्यो निश्चय किए हैं।

समाधान

स्थायी भाव दो प्रकार का होता है एक जीवगत दूसरा मनोगत। ये दोनो नाम हमारे नवीन कल्पित है किसी ग्रथ मे नही मिलेंगे, जीवगत स्थायी भाव है जिस समय ब्रह्म से जीव भिन्न होता है उसी समय यह सब विकार प्रकृति रूप होकर जीवात्मा मे स्थिर हो जाते है। वही सब बीज रूप स्थायी भाव है - वही बीज रूप स्थायी के अनुकूल मन मे विकार प्रकट हुआ करते हैं। कोई विकार जब मन में स्थिर हो जाता है तब मनोगत स्थायीभाव होता है। वह मनोगत स्थायी भाव बढते-चढते जब सपूर्ण ससार से मन को खीच कर अपने मे आशक्त कर लेता है, मनुष्य को तन-मन का ज्ञान नहीं रह जाता, तब वह स्थायी भाव की रस संज्ञा होती है। जीवात्मा में प्रकृति रूप विकार बीज होकर यदि प्रथम ही स्थिर न हो तो मन मे कभी राग कभी विराग कभी क्रोध कभी हँसी इकबारगी मन में कैसे प्रकट हो सकते है। मनुष्य चैतन्य होते हुए जड़ हो सकता है और मनुष्य का हृदय उद्दीपनों से कैसे द्रवीभूत हो

सकता है इस कारण से आचार्यों ने स्थायी भाव को रस का बीज माना है और स्थायी भ सब भावो मे श्रेष्ठ है। स्थायी भाव अनादि है और चिरायु है यह स्थायी भाव दस प्रकार : होता है।

ब्रजेश जी का दसवाँ स्थायी भाव 'शुद्ध प्रीति' है। दसवॉ रस उन्होंने वात्सर माना है। अत दसवॉ स्थायी भाव वत्सल या वात्सल्य होना चाहिए था।

ब्रजेश जी ने ब्रह्म के निर्विकार होने पर जीव के सविकार होने मे आपत्ति की है क्योंकि जीव ब्रह्म का अश है परन्तु इसका कारण मायायुक्तता बतलाकर सक्षेप मे शब का निर्मूलन कर दिया है और प्रमाण-स्वरूप तुलसी की ये चौपाइयॉ उद्धृत की हैं -

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।
सो मायावस भएउ गोसाई। बंध्यो कीर मर्कट की नाई।।

षष्टम् तरग में सचारी भावो की विवेचना की गई है। सचारी भावो का विश्लेषण करते हुए ब्रजेश जी कहते हैं कि सचारी भाव नवों रसो मे सचरण करते है, वे रसो के सहायक होते हैं और प्रकट हो हो कर के छिप जाते हैं। उसकी परिभाषा वे इस प्रकार देते है -

थायी के अनुकूल जो पीछे प्रगटत भाव।
ते संचारी भाव हैं वर्णत सब कविराव।।

स्थायी और संचारी भाषो का अंतर यों समझाते है -

यद्यपि एकहि थल प्रगट, पै अंतर कविराव।
थायी हैं थिर भाव अरु, संचारी चर मान।।

संचारी भावों का यह विवेचन और स्पष्टीकरण सर्वथा उपयुक्त है और निर्भ्रांत भी। इसी रूप मे आज सचारी भावो की व्याख्या की गई है। सर्वमान्य ३३ सचारी भावो के लक्षण उदाहरण भी क्रम से प्रस्तुत किए गए है। देव की भाँति ब्रजेश जी 'छल' ऐसे किसी नवीन संचारी भाव की उद्भावना में नही लगे।

सप्तम् स्तरंग मे अनुभवो की व्याख्या की गई है। ब्रजेश जी ने अनुभावो को कार्य रूप कहा है -

वर्णत हैं कवि काव्य में कारज रूप हमेश।
रस को अनुभावित करत सो अनुभाव ब्रजेश।।

अनुभाव शारीरिक हुआ करते हैं, रसोत्पत्ति होने से ये अगो मे परिलक्षित होने नगते है -

रस अनुकूल शरीर में, चेष्टा जे बहु भाँति ।
तेई सब अनुभाव हैं, वर्णन कवि मुलमति ॥

'अनुभाव रस को अनुभावित करते है। ये रस के बोधक कहे जाते है, अर्थात् शरीर की चेष्टाओ द्वारा रस को जाहिर किया करते है । मानसिक होते हुए भी वे शारीरिक माने जाते है, क्योकि इनमे चेष्टाओं की प्रधानता होती है। कार्यरूप होकर वे अगो मे दिखलाई पडते है।' अनुभावो की यह व्याख्या भी स्पष्ट और निर्भ्रांत है। अनुभाव के ब्रजेश जी ने ८ मुख्य भेद गिनाए है - स्तंभ, कप, स्वरभग, विवर्ण, अश्रु, स्वेद, रोमाच और प्रलय - तथा इनके उदाहरण भी प्रस्तुत किए है। कतिपय आचार्यो ने उपर्युक्त आठ भेद सात्विक भावो के निर्धारित किए है, कितु श्री ब्रजेश जी के पूर्वज आचार्य विश्वनाथ का मत है कि 'सात्विक भाव रस के प्रकाशक होने के कारण अनुभाव ही हैं, किंतु गोवलीवर्द न्याय के अनुसार ये पृथक भी कहे जा सकते हैं। ब्रजेश जी ने सात्विक भावो की चर्चा नही की है, सभवत: अनुभाव से पृथक न मानने के कारण।

अष्टम तरग मे सयोग शृगार का विशद वर्णन किया गया है। शृंगार निरूपण मे विशेष अवलोकनीय बात यह है कि तार्किक एव तुलनात्मक विवेचना करते हुए ब्रजेश जी ने शृंगार का रसराजत्व सिद्ध करने का सफल प्रयत्न किया है। दूसरी विशेषता यह है कि कवि ने शृगार के सर्वमान्य दो भेदो (सयोग और वियोग) में से सयोग के दो उपभेद किए हैं - १ मम सयोग २ पूर्ण सयोग इसकी व्याख्या उन्होंने इस प्रकार से की है - 'दम्पति नायिका और नायक समीप में न हो, परन्तु वियोग न हो, जैसे नायिका गृह मे है और नायक कहीं घूमने गया है तो ऐसी दशा मे सम सयोग शृगार होगा। दम्पति दोनो समीप में हो या केलि कलाओ मे संयुक्त हों, वहाँ पर पूर्ण सयोग होता है।' यह नई उद्‌भावना महाकवि काव्याचार्य ब्रजेश की है, जो विचारणीय भी है। केशवदास जी ने भी शृगार (सयोग और वियोग) के दो भेद प्रच्छन्न और प्रकाश किए थे पर वे भेद ब्रजेश जी कृत भेदो से भिन्न है। इसके अनतर ब्रजेश जी ने सयोग शृगारान्तर्गत द्वादश हावो का लक्षणोदाहरण सहित वर्णन किया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं - लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टाइत, विव्वोक, कुट्टमित, ललित, हेला और बोधक। नायक और नायिका की साधारण स्वाभाविक चेष्टाओ को ब्रजेश जी ने हाव की सख्या दी है। ब्रजेश जी ने लिखा है कि अनेक मतों का अवलोकन करके उन्होंने अपनी बुद्धि के अनुसार इन्ही हावो की स्थापना की है कितु इस हाव अथवा सयोग शृगार की दपति चेष्टा को लेकर अन्य आचार्यों ने अधिक सूक्ष्म विश्लेषण किया है।

आगे वियोग शृगार की व्याख्या की गई है - नायक नायिका में किसी कारणवश सयोग न हो सकने पर वियोग शृगार होता है। वियोग शृंगार के पॉच भेद होते है -

१ अभिलाषा हेतुक (पूर्वराग २ विरह हेतुक ३ असूया हेतुक ४ प्रवास हेतुक ५ शाप हेतुक पहले चौथे और पाँचवे प्रकार का वियोग ता नाम से ही स्पष्ट है विरह हेतुक वियोग तब होता है जब पति के सपत्नियों के वश मे होने का अथवा पत्नी का गुरुजनों, लोकलज्जा अथवा चुगुलियो की शंका के कारण न मिल सकने का वर्णन हो तथा जहाँ ईर्ष्या या द्वेष भाव से मान प्रकट हो वहाँ पर असूया हेतुक वियोग होता है। इन सभी प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत करने के अनतर ब्रजेश जी ने वियोगातर्गत दस कामदशाओ का वर्णन करते हुए बतलाया है कि 'जैसे सयोग शृंगार में हाव कहे गए है जैसे ही वियोग शृगार मे दशाएँ होती है' जिनके नाम इस प्रकार है - अभिलाषा, चिता, स्मरण, उद्वेग, गुण कथन, व्याधि, प्रलाप, उन्माद, जडता, मरण। यहीं पर श्री सजनेश जी से दो एक शकाएँ उठवाई गई है, यथा -

करुणा रस में मरण को है सब विधि सों योग।
क्यों शृंगार रस में कह्यो मरण दशा बुध लोग ॥

अथवा 'गुण कथन' दशा मे और 'स्मरण' दशा मे क्या अतर है तथा उनका समाधान किया गया है, 'श्री सजनेश उवाच' लिख कर ग्रंथ में नाटकीयता एव पौराणिक रोचकता का इस रसग्रथ मे आचार्य ने समावेश कर दिया है। इस प्रकार से प्रश्नोत्तरो के कारण यत्र-तत्र विषय अधिक स्पष्ट और बोधगम्य हो गया है तथा ग्रथकार की सूक्ष्म दृष्टि भी परिलक्षित होती है। इसके अनतर शृगार रस के 'आलबन विभाव' के अतर्गत सर्वप्रथम चार प्रकार के दर्शनों का वर्णन किया गया है - श्रवण, चित्र, स्वप्न और प्रत्यक्ष। शृगार रस के आलंबन नायक और नायिका है, इतना मात्र कहकर कवि आगे बढ गया है। नायक और नायिका के भेद प्रभेदो का स्पर्श भी नहीं किया गया है। पूर्ववर्ती कवियो ने शृगार रस के आलबन विषय की चर्चा प्रारभ करके इसी विषय पर ही इतना विस्तार कर दिया है कि शृगार रस के अन्य अंगों एव अन्य रसों का लेशमात्र भी विचार नहीं किया है कितु ब्रजेश जी की दृष्टि स्वस्थ और वैज्ञानिक रही है। उन्होंने आलबन विषय को अत्यत व्यापक और स्वतत्र ग्रंथ का विषय समझ इस ग्रंथ मे बिलकुल ही उसकी चर्चा नही की है। आलबन रूप नायक और नायिका के भेद-प्रभेदो की दृष्टि से उनका दूसरा ग्रथ 'शृंगार शिरोमणि' देखा जा सकता है।

नवमस्तरंग में शृगार रसांतर्गत उद्दीपन विभाव का वर्णन आया है - 'नायिका नायक के हृदय में जिनको सुनकर या देखकर प्रीतिभाव (रतिभाव) प्रकट हो वहीं सब शृगार रस के उद्दीपन विभाव हैं जैसे चंद्रोदय, चंद्रिका, कर्पूर, चंदन तथा षड्ऋतु, सखी, दूती, वन उपवन आदि की शोभा। उदाहरण रूप में चन्द्रोदय तथा षड्ऋतुओं का विस्तृत विवरण ब्रजेश जी ने दिया है।

दशमस्तरग मे ब्रजेश जी ने शृंगार रस का समर्थन करते हुए अनेक तर्क प्रस्तुत किए है जैसे सम्पूर्ण सृष्टि का आदि कारण शृंगार है, शृंगार रस की कविता पढने से स्त्री पुरुष मे एक दूसरे के प्रति प्रेम बढता है (यद्यपि इसके विपरीत भी हो सकता है)। स्त्री पति से व्यवहार करने की शिक्षा प्राप्त करती है अन्यथा अनभिज्ञा कहलाती है। कवियो ने स्वकीया का वर्णन कर स्त्रियो को सच्चरित्रता का पाठ पढाया है और परकीया अथवा गणिका वर्णन के व्याज से उन्हें भयभीत भी किया है। ब्रजेश जी लिखते है कि इन कारणों से शृंगार रस ऐसे उत्तम पदार्थ का किसी को विरोध न करना चाहिए। आगे आप लिखते हैं - 'वर्तमान समय के कवि शृंगार रस की घोर निदा करते है यद्यपि हृदय शृंगार ही के रंग में रँगा रहता है। क्षण मात्र को भी वे वियोग नही सहन कर सकते। गलियो मे, वाटिकाओ मे, बाज़ारो मे शिर खोले हुए स्त्रियाँ उनके साथ रहती है। यह आश्चर्य है। आधुनिक कविजन टट्टी की आड से शिकार खेलते है। संध्या, ऊषकाल, नक्षत्रावलि, रात्रि, सरिता, कमलिनी आदि के वर्णन मे अन्योक्ति के द्वारा नायिकाओं का वर्णन स्पष्ट हो जाता है, परन्तु ये कवि प्रत्यक्ष मे नायिका, नायक लिखने मे लज्जित होते है।' शृगारिक काव्य का पक्षपात करते हुए ब्रजेश जी ने यह भी बताया है कि स्त्री का सम्मोहन किसको वश में नही करता, ब्रह्मा ने ही शृगारमयी सृष्टि की रचना की है। वेदो और पुराणो मे नायिकाओ एव शृगार रस की महिमा का वर्णन उपलब्ध है (ब्रजेश जी ने सामवेद से एक अवतरण भी प्रस्तुत किया है।) तब ब्रजभाषा कवियों द्वारा शृगार अनुचित नही कहा जाना चाहिए। शृगार को रसराज कहते हुए अन्य रसो को उसके आश्रित भी बतलाया है और कहा है कि 'ऐसे उत्तम रस के विरोधी होना बडे दु ख का विषय है। शृगार रस की निदा विरागियो को करना चाहिए . . . परतु जिनका मन वृद्ध होने पर भी शृगार से दूर नही होता ऐसे पुरुषो के मुख से शृगार की निदा उचित नही जान पड़ती। शृगार रस तो नपुंसकत्व की परम औषधि है .. शृंगार विरोधी मनुष्य कुछ काल में नपुंसक हो जाते है, इस प्रकार शृगार रस के मडन अथवा पक्ष मे ब्रजेश जी ने प्राचीन आचार्यो की भॉति बहुत कुछ कहा है। ये तर्क बहुत पिटे पिटाए है, हरिऔध जी ने भी इसी प्रकार की बाते नायिका भेद एव शृगार काव्य के सबध मे अपने 'रसकलश' में लिखी है तथा इनके काव्य के आधुनिक अध्येता को तुष्टि नही हो सकती। सच तो यह है कि शृगार के समर्थन मे पूरा एक तरंग लिखने की कोई आवश्यकता न थी तथा केशव की रसिकप्रिया की तरह अन्य रसों को शृगाराश्रित सिद्ध करने की भी कोई आवश्यकता न थी क्यों कि ऐसा करने में ब्रजेश जी को कोई सफलता भी प्राप्त नही हुई है। उनके तर्क निष्प्रभ है, फिर भी शृंगार काव्य का महत्व कम नही होगा यह सच है। शृगार के रसराजत्व एवं महात्म्य के संबंध में ब्रजेश जी ने पहले जो कुछ लिख दिया है वही पर्याप्त है। इस तरग मे ब्रजेश जी ने शरीर के षोडश शृंगारो एव द्वादश आभूषणो का भी वर्णन किया है।

एकादश तरग मे हास्य करुण रौद्र एव वीर का निरूपण हुआ है प्रत्येक रस की विवेचना मे स्थायी भाव विभाव अनुभाव और सचारी भावो के निर्देश के अतिरिक्त ब्रजेश जी ने उन रसो के वर्ण, देवता, शत्रु एव मित्र रसो का भी उल्लेख किया है, साथ ही प्रत्येक रस की विशेषता और उसकी किन्हीं सूक्ष्म बातो की ओर ध्यान आकर्षित किया है जैसे करुण और वियोग शृगार में अतर अथवा करुण के स्थायी भाव शोक की दयावीर के स्थायी भाव दया से भिन्नता। हास्य एव करुण रसो का अच्छा उदाहरण नही मिलता। रौद्र और वीर रस के उदाहरण ठीक है। वीर के परम्परागत चार भेद हे - युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर, दयावीर। इस तरंग के अत मे रौद्र एव वीर रस सबधी एकाध छोटी मोटी शका का समाधान करने का यत्न किया गया है।

द्वादश तरग मे भयानक, वीभत्स, अद्भुत एव शात रसो का क्रमशः निरूपण हुआ है। रस-विवेचना सम्यक, पुष्ट और विस्तृत है तथा एकाध को छोड सभी उदाहरण अत्यत उपयुक्त है। प्रत्येक रस का विश्लेषण धैर्य के साथ, रसागो का विधिवत निर्धारण करते हुए किया गया है। यह गुण रीतिकाल के अन्य रस-ग्रथो मे नही मिलेगा। अद्भुत एव शात रसो के उदाहरण उत्तम है।

त्रयोदश तरग मे वात्सल्य एव साधारण रसो का निरूपण एवं रस-दोषो का वर्णन है। 'वात्सल्य' को प्राचीन आचार्यो ने रस नही माना था, भाव मात्र स्वीकार किया था किंतु ब्रजेश जी ने इसे दसवॉ रस कहा है। इसके अंगों का विवरण वे इस प्रकार देते है - स्थायी भाव बालक विषयक शुद्ध प्रेम, देवता बालगोपाल, वर्ण अरुण, आलबन माता-पिता आदि, उद्दीपन मद-मद चलना हॅसना तोतली वाणी तथा अनेक बालक्रीडाएं, उत्कठा आदि सचारी और अश्रु रोमाच पुलक प्रसन्नता आदि अनुभाव। यह सब ब्रजेश के दो भेद सयोग और वियोग भी शृगार की ही भॉति किए गए हैं तथा उदाहरण भी सामान्यतया ठीक बन पडे है। 'साधारण रस' तो ब्रजेश जी की नवीन सूझ है। मुझे ऐसा जान पडता है कि इस नवीन रस की कल्पना की प्रेरणा ब्रजेश जी को 'स्वभावोक्ति अलकार' मे मिली है। जिस प्रकार से अलकार के आचार्यो ने स्वाभाविक उक्ति को भी अलंकार के अतर्गत मानकर सभी प्रकार के काव्यो मे अलकार की अनिवार्यता घोषित की उसी प्रकार से रस-सप्रदाय के सुविख्यात आचार्य विश्वनाथ के वंशज श्री ब्रजेश जी ने भी दस रसो मे न समा सकने वाले काव्यो को अपने इस एकादशम् रस मे समाविष्ट कर लेने की चेष्टा की है। इस नवीन 'साधारण' रस की स्थापना के पक्ष मे ब्रजेश जी के तर्क इस प्रकार है - बहुत से प्रसग ऐसे हैं जिनमे नवरसातर्गत कोई भी रस नही दिखलाई पडता जैसे वन, पर्वत आदि की नैसर्गिक शोभा का वर्णन, पुनः ऋतुओ के वर्णन मे, सूर्योदय और चन्द्रोदय के वर्णन में कौन सा रस है जिसे आप नवरसों में परिगणित कर सके ? इसी प्रकार देवता, सत, मुनि, स्वामी की सेवक सखादिकों के प्रति प्रीति होने से कौन

सा रस माना जाएगा ? इस तरह से काव्याचार्य ब्रजेश द्वारा ग्यारहवे रस 'साधारण' की स्थापना का कारण यह प्रतीत होता है कि दश रसों में न आने वाले काव्यों का समावेश इस रस में हो जाएगा। इस नवीन रस का निरूपण इस प्रकार हुआ है - सहज प्रीति स्थायी भाव है, देवता श्री विराट भगवान, रग मिश्रित, सत्संगति तथा प्राकृतिक दृश्य आदि उद्दीपन विभाव हैं। पुलकावलि आदि अनुभाव है। इस रस के भेद अनत और विषय अनेक हे। यह निरूपण पूर्ण नही कहा जा सकता तथा अभी इसकी वैज्ञानिक व्याख्या अपेक्षित है। ब्रजेश जी ने साधारण रस के भेदो की अनतता एव विषयों का नानात्व बतलाते हुए भी कुछ मुख्य भेदों एव विषयो का निर्देशन किया है। जैसे - १. देश विषयक सहज प्रीति २ प्रकृति विषयक सहज प्रीति जिसमे सूर्योदय, चन्द्रोदय एवं ऋतु के वर्णन आते हैं ३ देव विषयक सहज प्रीति ४ मुनि विषयक ५ स्वामी विषयक ६ सेवक विषयक और ७ सखा विषयक सहज प्रीति तथा इनके सुंदर उदाहरण भी प्रस्तुत किए है। इस नवीन रस की उपयुक्तता विचारणीय है किंतु ब्रजेश जी ने इसका निरूपण अपने ढग मे यथेष्ट सुदरता एव सबलता से किया है। अत मे १ प्रत्यनीक २ निरस ३ विरस ४ दु:सधान ५ पात्रा दुष्ट ६.शब्द वाच्यता ७ रसभाव विरुद्धा ८ रसहीन नामक आठ रस-दोषों का सोदाहरण विवरण देते हुए कवि ने ग्रथ समाप्त किया है।

किंतु रस-दोषो का यह निरूपण अपूर्ण एव भ्रामक है। दोषो की ठीक टीका नही हुई है · उदाहरण के लिए दूसरा दोष रस-दोष नही कहा जा सकता क्यों कि ऊपर से मीठे वचन और भीतर से कपट का वर्णन मनोवैज्ञानिक चित्रण का विषय है, रस दोष का विषय नही। तीसरे, चौथे, पॉचवे और सातवें दोषों की भी यही दशा है। केवल दो तीन रस-दोषो का निरूपण ठीक कहा जा सकता है।

यह ग्रंथ महाराज महेन्द्रमणि वीरसिह देव के लिए लिखा गया है और उन्हीं को समर्पित भी हुआ है। ग्रथात में भी उन्ही की विजय की जगदवा से कांक्षा व्यक्त की गई है। ग्रथ की समाप्ति-तिथि आश्विन शुक्ल सप्तमी स १९९३ बतलाई गई है -

संवत शिव के नेत्र निधि ग्रह शशि आश्विन मास।
शुक्ल पक्ष सप्तमि कियो संपूरण सहुलास॥

इस तेरहवे तरंग की समाप्ति के अनतर कवि ने अपने वश का सक्षिप्त परिचय भी दिया है।

काव्याचार्य महाकवि ब्रजेश का यह रस-ग्रंथ उनके अत्यत परिश्रम, अध्ययन और मनन का फल है। जिन कतिप्य दोषो का उपर्युक्त विश्लेषण में उद्घाटन किया गया है उनके हट जाने पर यह ग्रथ 'रस-रसांग-निर्णय' अपने विषय का, अपने ढग का अनूठा ग्रंथ कहा जाएगा। कवि ने अपनी कवित्व शक्ति एव आचार्यत्व का इस ग्रथ मे यथेष्ट सुंदर परिचय दिया

है इसमे सदेह नही कवि की दृष्टि मे सूक्ष्मता है और बुद्धि मे तीक्ष्णता मनन चिंतन और शास्त्रज्ञान ने ग्रथकार मे मौलिकता का गुण भी जोड दिया है जो इस ग्रथ मे यत्र तत्र प्रकट है और जिसका उल्लेख स्थान-स्थान पर किया जा चुका है। खडन-मडन, शका-समाधान, प्रश्नोत्तर आदि की परिपाटी का अनुसरण कर तथा वार्तिक नाम से पद्य मे किए गए निरूपण का गद्य रूपातर करके कवि ने विषय को यथेष्ट सुबोध और स्पष्ट करने की भरसक चेष्टा की है। शृंगार पर अवश्य कुछ अधिक लिख दिया गया है किंतु सभवत· शृगार की रस-राजकता सिद्ध करने के उद्देश्य से ही। शृगार तथा अन्य रसो एव रसागो के उदाहरण यथेष्ट सुदर भाव-पुष्ट एव कलापूर्ण प्रस्तुत हुए है, स्वशब्द वाच्यता अथवा अनुपयुक्तता कहीं-कही ही मिलेगी। इस प्रकार अनेक गुणों से परिपूर्ण यह ग्रथ रीतिकाल मे लिखे गए अधिकाश आचार्य कवियो के ग्रथो से श्रेष्ठ है। केशव, देव, मतिराम, पद्माकर आदि के ग्रथ भी इतने सुदर और पुष्ट नही है। ब्रजेश जी की इस रस कृति के लक्षण एव उदाहरण दोनो भाग समान रूप से उत्कृष्ट एव पुष्ट है। यदि यह ग्रथ प्रकाश में आता होता तो 'हिन्दी काव्य-शास्त्र का इतिहास' जैसे प्रबध ग्रथ में इसका नाम अवश्यमेव आदर के साथ लिया जाता।

(१९५४-५५)

मोहन-चरित्र-माला

महात्मा गॉधी के चरित्रगान सबधी इस ग्रथ की भाषा ब्रजभाषा है तथा इसकी रचना शैली प्राचीन ब्रज भाषा प्रबंध काव्यो सी ही है जिसमे विषय का तथ्यात्मक वस्तुपरक वर्णन न किया जाकर आलकारिक शैली मे अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया जाता है। भगवान कृष्ण का ध्यान अथवा स्तवन करते हुए इस चरित्रग्रथ का प्रारभ किया गया है। मंगलाचरण मे पार्वती का भी नामोल्लेख है। एक अन्य छन्द मे वस्तुनिर्देश किया गया है अर्थात यह बतलाया गया है कि ग्रथ रचना का विषय क्या है, आगे चलकर अत्यत सक्षेप मे थोडी आत्म-प्रशस्ति की गई है।

चार छन्दो मे गॉधी जी के जन्म का उत्साहपूर्ण वर्णन है। इनके जन्म का महत्व और उसका प्रभाव भी दिखलाया गया है -

जन्म भयो जौन छन गॉधी गुनमंदिर को
तौन छन छुद्रन को दूर छलछंद भो।
कहत ब्रजेश हिन्द जनमें जनेश ऐसे
रहित कलेश देश देश मैं अनंद भो॥
पादप प्रबल परतंत्रता को छीन भयो
अंकुर स्वतंत्रता को उमगि अमंद भो।
लंदन में बंद को स्वछन्द सैन सेजन को
तेज अॅगरेजन के नेजन को मन्द भो॥

उनके जन्म स १९२५ विक्रमीय (तद्नुसार १८६९ ई अक्टूबर माह) तथा जन्मस्थान पोरबदर का उल्लेख हुआ है। आगे चलकर दो ही छंद मे गॉधी जी के बडे होने, खेलने, अध्ययन करने और विकसित व्यक्तित्ववान होने का वर्णन है -

कर्मचंद मोहन के चंद की कला के सम
अमित अमंद भरे अंग बढने लगे।
देखि देखि चारौं ओर चलत विनोद भरे
मातु औ पिता के मन मोद मढने लगे॥
बीते कछु काल लाल बालन के हाथ गहि
साथ साथ खेलिबे के हेतु कढने लगे।
संस्कृत भाषा देश भाषा और यमन भाषा
मातृ भाषा लंदन की भाषा पढने लगे॥

बाल ही पने तै गाधा भए है प्रभावशाली
भावशाली दिव्य दुति देह मै दमकदार
विमल विशालभुज विमल विशाल दृग
विमल विशाल भाल तेज सों तमकदार ।।
कहत ब्रजेश लागो बढन प्रताप दाप
गौरव को थाप प्रजागन मैं गमकदार ।
होनहार पादप के होनहार होत अंग
होनहार पत्र होत चीकने चमकदार ।।

लदन मे जाकर बैरिस्टरी पास करने और स्वदेश लौटने का वर्णन एक ही पक्ति में इस प्रकार कर दिया गया है - 'शास्त्र अनेक स्वछदन सो पढ़ि लदन जाय बैरस्टरी लाए ।' आगे उनके स्वभाव, प्रभाव, प्रताप, विचारशक्ति, बुद्धि बल, साधुता, शुद्धता, सिद्धता और प्रसिद्धता की प्रशंसा की गई है -

मंदर से मेरु से विचार ऊँचे मोहन के
विद्या बुद्धि बल को कहाँ लौं अवगाहिए ।
साधुता सराहिए की शुद्धता सराहिए
प्रसिद्धता सराहिए की सिद्धता सराहिए ।।

गाँधीजी के योग तप संयम नियम व्रत और अहिसा धर्म की सराहना देश देशान्तरो में हुई ।
गाँधीजी के अफ्रीका जाने का वर्णन इस प्रकार से किया गया है -

दर्शन बल श्रौनन सुनत करि दर्शन उत योग ।
आकर्षन लागे करन अफरीका के लोग ।।
लखि अनेक सज्जनन को आदरयुत अनुरोध ।
अफरीका गमनत गए गाँधी शास्त्र सुबोध ।।

अफ्रीका के भारतवासियो ने उनका अपूर्व स्वागत किया । गाँधी जी ने अपनी वकालत से दीन दुखी और अनीति से त्रस्त भारतीयो के दुखो को दूर करने का अनथक प्रयत्न किया । गाँधीजी ने परोपकार धर्म का श्रीगणेश यही से किया और अन्याय, अत्याचार और भेदभाव के विरुद्ध उनके हृदय में यही पर अग्नि भी प्रज्ज्वलित हुई -

यद्यपि वकील रहे आर्ज रूप गाँधी तऊ
बड़े बड़े साहस के कारज करते रहे ।

करते प्रहार रहे भाषन के नेजन को
नहीं अँग्रेजन को नेकु डरते रहे ।।
वृंद मजदूरन को कूरन के फंद फँसो
ताको दुख दूरन कै मोद भरते रहे ।
एक हू घरी का वेश धरते रहे न दूजो
देश अफरीका को कलेश हरते रहे ।।

इस प्रकार से जनसेवा और अन्याय निवारण करते हुए गॉधी जी ने २० वर्ष अफ्रीका मे व्यतीत किए । गीता और पुराण तो गॉधीजी ने भारत में ही पढ रखा था परन्तु अफ्रीका जाकर उन्होंने कुरान का भी अध्ययन किया । अफ्रीका मे गोरो के अनीतिपूर्ण शासन के फलस्वरूप ही उनके मन मे अटूट देशभक्ति और स्वातंत्र्य का भाव उदित हुआ तथा भारत मे निवास करने वाले हिन्दू और मुसलमानो की एकता की बात भी यहीं पर उनके मन मे पैठी -

कहत ब्रजेश किए मेल इसलामिन सों
एकता के भाव हिए पूरित कै छैम सों ।
भारत में रहि के पुरान अरु गीता पढे
जाय अफरीका मैं कुरान पढे प्रेम सों ।।

यद्यपि करत अफरीका में निवास गॉधी
नित्य प्रति हिंद भग्ति तद्दपि अनंत होय ।
कहत ब्रजेश कौन कीजै उपचार जासों
विमल विचार या हमारो बलवंत होय ।।

मोचत रहत दुख शोचत रहत यही
कौन भॉति देशद्रोह भार विन तंत होय ।
कैसे दृढ मंत्र होय दूर परतंत्र होय
भारत स्वतंत्र होय ब्रिटिस को अंत होय ।।

गॉधीजी की कीर्ति-कौमुदी का यहीं से प्रकाश हुआ । उनके मित्रो और स्वजनो ने उन्हे भारत आमत्रित किया । स्वदेश के आर्कषण से वे अफ्रीका छोडकर भारत वापस आए, यह बात १९१५ ई मे हुई । उनका यहॉं पर बडा स्वागत हुआ, देश परम हर्ष से भर गया । उधर भारत पर शासन करने वाले ब्रिटिश शासको की क्रूरता बढ़ती गई । उन्होने नित्य नई आज्ञाएँ प्रचारित की जिनकी कठोरता से देश पिसने लगा -

जबूदीप वासिन के बद मुख देख्यो गाधी
फद मे फँसो है देश मद है मलीन है
सपति विहिन है पराक्रम सो हीन है
यही से पराधीन है दुखी है अतिदीन है ।।

ो ऐसी दशा देखकर गॉधीजी गोपालकृष्ण गोखले से मिले, उ
क अनतर उन्होने सत्याग्रह आन्दोलन का प्रारंभ किया -

गॉधी मिले प्रथम गोपाल कृष्ण गोखले सों
साथ में सुमति कॉगरेसिन के प्रात हैं।
सहमत ह्वै के सत्याग्रह को अरंभ कियो
साबरमती के जहॉ थल अवदात हैं ।।
कैद कियो बापू को गोरंडो ने उदंड ह्वै के
छोंडत कबहुँ कैद कबहु लखात हैं।
मानत न हार हैं अपार व्रती कर्मचंद
बार बार यही भॉति कारागार जात हैं ।।

ढ व्रत धारण करने वाले गॉधीजी सत्याग्रह नहीं छोडते, उधर क्रूर ग
ार काराग्रह मे डाल देते हैं । अचानक पजाब के गोली और
श क्षुब्ध हो उठता है और जनता की क्रोधाग्नि भडक उठती
ा रोगटे खडे कर देती थी -

बिन बसन करि बिन असन प्रानिन, कसन तैं अति
प्रज्वलित बालू जेठ की गोरंड तहॉ घसीटहीं ।।
रंगीन असि जंगीन से संगीन से संहारहीं।
अति दीन प्रजा हसीन तिनहिं मसीन गन से मारहीं।
पंजाब की नारी नरन सों जेल सारी भरि गई।
बनिता हजारन सहित बारन बिन अहारन मरि गई ।।
पंजाब को सुनि घोर अत्याचार हत्या करन में।
इक बारगी भभकी अचानक आगि भारत नरन में।

े से जलते हुए भारतवासी अनेक प्रकार के उपाय सोच रहे थे। प
र न प्रतिशोध की शक्ति। वे गॉधीजी के पास गए। गाँधीजी ने हिन
एक होकर अहिंसा के शस्त्र से शत्रु से युद्ध करने का उपाय बतलाय
ो लेकर गाँधीजी देश के प्रत्येक प्रात मे गए। वे जहॉ जहाँ गए व

नेता तैयार हुए उनकी वाणी मे जाने कौन सा आकर्षण था कि एक साथ मोतीलाल, जवाहरलाल, सरदार पटेल, शौकतअली जैसे नेताओ का अभ्युदय हुआ। गॉधीजी के प्रभाव का वर्णन ब्रजेश जी ने इस प्रकार किया है -

(क) **गॉधीजी को मंत्र है कि भाषन स्वतंत्र है**
की यंत्र है कि जादू है न जाने कौन योग है।

(ख) **हिन्द लागो मचलै समाधी के विचल होत**
ऑधी के समान चक्र गॉधी को चलै लगो ॥

धीरे-धीरे देश की स्वतंत्रता के आन्दोलन ने जोर पकडा -

दक्षिन में मोरचा पटेल सरदार को है
सौकत अली के शूर पश्चिम लखात हैं।
ऊधम मचाय रहे उत्तर में राजइंद्र
पूरब में तिलक सुभास मँडरात हैं ॥
मध्यप्रांत मोतीलाल मालवी जवाहिर के
कांगरेसी झुंडन के झंडा फहरात हैं।
गॉधी काम देखत न शीत घाम देखत
जहॉ पै काम देखत तहॉ पै दौरि जात हैं ॥

झंडा लिए हाथ में तिरंगा कर्मचंद गॉधी
भारत में घोर घमासान करने लगे।
बडे बड़े नेता हैं तयार तिन्हैं धैर्य दै दै
चारौं ओर भाषन के सोर भरने लगे ॥
हिन्द के निवासिन में आगि सी भभक उठी
दासता के आह के अंगारे झरने लगे।
कॉग्रेस प्रताप की प्रचंड ज्वाल जागने से
गौरमिंट दल के गोरंड जरने लगे ॥

एकाएक हिन्दुस्तान में जोरदार आन्दोलन उमड उठा और असहयोग आन्दोलन में लाखो आदमी साथ हो गए और गॉधीजी का आदेश मान कर पुलिस की मार सहते हुए भी नमक बनाने लगे। ये आन्दोलनकारी हाथ मे तिरंगे झंडे लेकर रण की उमग मे रँग कर शस्त्रधारियो से बिना शस्त्र के ही जग करने लगे। स्वदेश प्रेम की लहर किस प्रकार जन जन में दौड पडी और उन्होने किस प्रकार से विदेशी वस्त्र का बायकाट किया इसका सजीव चित्र देखिए -

बंद दुकानै बजारन मे भईं होय हजारन की चह हानी
त्यागि दीन्हे वकील अदालत जात नही प्रन ठानी
विद्यारथी नहिं विद्या पढ़ैं तजि के इसकूल करै मनमानी
नौकर जे अँगरेजन के दिए नौकरी छोडि सहस्रन प्रानी ॥

लाय दुकान तैं फूकैं बजाज नए पट थान जे कीमत वेशी ।
अंगन में पहिरै लगे खद्दर चद्दर काति कै सूत स्वदेशी ॥
मानत ना अनुशासन साह को युद्ध उमाह भरे जन देशी ।
मारहु तैं मुख मोरत हैं नहीं तोरत फोरत माल विदेशी ॥

भारत के निवासियो का घोर उत्पात देखकर पुलिस शासन कठोर कर दिया गया तथा सत्याग्रहियों को दंडित किया जाने लगा । सरदार पटेल और जवाहरलाल नेहरू जैसे योद्धाओ के साथ उपद्रवी वीर मॅंडराने लगे । वे मार खाते है परन्तु पुलिस का उन्हें कोई भी भय नही । लाखो लोग जेल गए तथा लाखो लोग जेल की तैयारी मे लगे है । सभी नेता एक एक कर जेल चले गए । भारत के कारागार भारत की प्रजा से भर गए यहाँ तक कि गॉधीजी भी जेल चले गए परन्तु उपद्रव की ऑधी फिर भी बंद नही हुई । सत्याग्रह के अस्त्र और साहस की ढाल से ये दीवाने लड़ते ही रहे । बापूजी की आज्ञा से अपनी संपत्ति और घर-बार छोडकर लाखो लोग देश के लिए अपने प्राण देने को तैयार थे । बेशुमार स्त्रियो ने भी पुलिस की यातनाएँ सहन की । काल सर्पिणी अथवा चण्डी के समान ये स्त्रियॉ तिरंगे झंडे लेकर स्वतन्त्रता-संग्राम मे अड जाती और कठोर संकटों के सामने भी धैर्य नही छोडती थी । वे अबला होकर भी सबला का काम करती थी । झॉसी में तो एक ही वीर लक्ष्मीबाई का उदय हुआ था किंतु आज सहस्त्रो वीर लक्ष्मियॉ एक साथ उदित हो गई थी । वे चारो ओर प्रचंड चंडिका सी दौडती और गोरंडो के कठोर दण्ड से भी हार नहीं मानती । उन्हे कारागृहो मे परेशान किया जाता तथा जंगलो की भयानक झाडियो मे भी छोड दिया जाता ।

इस प्रकार के घोर उपद्रव होते हुए अनेक वर्ष व्यतीत हो गए - कही असहयोग, कहीं अनशन, कही आंदोलन चलता ही रहा । अंग्रेजो के संत्रासक विधान चलते ही रहे परन्तु उपद्रवो का क्रम भंग नहीं हुआ, अंग्रेजों के भालों का बल स्वयं क्षीण हो गया । तब नेताओ और उनके साथ गए हुए सहस्त्रों आंदोलनकारियो को कारागृह से मुक्त कर दिया गया । फिर भला प्रसन्नता के मेघ क्यों न घहरते और महात्मा गॉधी के प्रताप के पताके क्यों न फहराते ? फिर भला ऐसे गाँधीजी की विजय कैसे न होती जिनके पास पटेल जैसी कराल करवाल थी और जवाहर जैसी ढाल । लाट गवर्नर आदि ने आपस मे मंत्रणा कर अपनी गवर्नमेंट की आज्ञा से भारत को स्वतंत्र कर दिया । जवाहर लाल नेहरू और पटेल को आदर के साथ लाट और गवर्नर ने परामर्श के लिए निमंत्रण दिया

और गाँधीजी को दरबार में स्वदेश के सारे अधिकार सौंप दिए। १९४७ की १५ अगस्त को भारत स्वतंत्र हो गया। सब लोग मोद से भर गए और सारे देश मे स्वतंत्र देश का झंडा महात्मा गाँधी के परिश्रम तप और तेज से फहराने लगा।

इसके पश्चात कवि ने महात्मा गाँधी के प्रताप और महात्म्य का वर्णन किया है - उन्हे भगवान का ग्यारहवाँ अवतार बतलाया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के दुख भागने लगा तथा मोद और विनोद के बाजे बजने लगे। देश के शासन कार्य को सँभालने के लिए सरदार पटेल और जवाहरलाल आगे आए। देश के सारे षड्यंत्र गोरो के साथ विदा हो गए। महात्मा गाँधी की मंत्रणा से देश के सभी नेताओ ने अपना अपना कार्य प्रारंभ किया। उन्होने देश के क्लेश को मिटाने का महान कार्य किया तथा देश मे व्याप्त द्वेष भाव को मिटाया। गायक, गुनी, कवि और कोविद सम्मानित हुए। देश के सम्मानित नेताओ की एक माला तैयार करते हुए उसमे कवि ने जवाहर लाल का विशिष्ट महत्व दिखलाया है। उस कल्पित माल के सुमन है - गाँधी, पटेल, मालवीय, पुरुषोत्तम, सुभाष, श्री निवास, सत्यमूर्ति, रवीन्द्रनाथ, सरोजिनी और मोतीलाल। इसके बाद अन्य नेताओ का माहात्म्य भी संक्षेप में कथित किया गया है-कैलाशनाथ काटजू, डॉ राजेन्द्र प्रसाद, गोविंद वल्लभ पंत, संपूर्णानन्द आदि। सब दिन एक से नहीं हुआ करते। साल, डेढ साल इस प्रकार भारत का शासन कुशलतापूर्वक चला कि अचानक एक दिन संध्या समय बापूजी पूजन के लिए जाते समय नाथू की गोली का शिकार हो गए - कृष्ण और गाँधी की मृत्यु एक सी ही हुई। सूर्य और गाँधी एक ही साथ अस्त हुए ऐसा वर्णन करते हुए कवि ने महात्मा की महानता दिखलाने की चेष्टा की है। महात्मा जी की मृत्यु से लोक मे अपार शोकान्धकार छा गया। गाँधी जी विश्व के दुःख दोहन के लिए अवतरित हुए थे। वे भारत की स्वतंत्रता के लिए शस्त्रधारियों से आजीवन नि शस्त्र लडते रहे। उन्होंने देश का दुख और दैन्य मिटाया तथा लोगो के हृदय से द्वेष और घृणा के भाव भगाए। उनके कर्म चन्द्रमा के समान अमंद थे तथा वे धैर्य और धर्म की धुरी थे। अत्याचारियों का भी वे उपकार करने वाले थे। ३० जनवरी १९४८ को गाँधीजी का निधन हुआ। श्रुति विधान के साथ उनका अंतिम संस्कार संपन्न हुआ। सारा देश शोक से उद्विग्न हो उठा परन्तु फिर भी जवाहर लाल ने धैर्य धारण कर भारत का प्रतिपालन कर्म प्रारंभ किया और देश का दुख दूर करने मे प्रवृत्त हुए। इस ग्रंथ की रचना समाप्ति की तिथि - मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी सं.२००७ है।

(१९६४-६५)

कविवर ब्रजेश का काव्य

ब्रजेश जी का काव्य मूलतः लक्षणानुसारी काव्य है। लक्षणानुसारिता की प्रवृत्ति कवि को ऐसा जकड देती है कि कवि फिर अपने को परम्परा की अर्गलाओं मे बेतरह बद्ध पाता है तथा उसमे उससे बाहर जाने की शक्ति नहीं रह जाती। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि वह काव्य परम्पराओ और रूढ़ियो मे ज़रा भी इधर उधर नही हटता किंतु यह ज़रूर कहा जा सकता है कि परम्परा से जब वह इधर उधर हटता है तो भी परम्परा उस पर हावी रहती है। कारण यह है कि परम्परागत काव्य संस्कृति मे ही वह वर्षो मे जीवित रहा आता है, उसे ही वह सिद्ध, निश्चित, श्रेयस्कर काव्यपथ मानता चला आता है, उसी परम्परा की काव्य विभूतियों में रमता-रमाता, उसी की महिमा का गान सुनता करता हुआ वह उससे भिन्न किसी मार्ग को अपने लिए चुन नही पाता। लक्षणानुसारी कवि की यही लक्षणबद्धता उसकी सबसे बडी सीमा है, कविवर ब्रजेश का काव्य इसी सीमा में आबद्ध काव्य है. यह पहली बात है जो हमे उनके संबंध मे समझ रखने की है। दूसरी बात जो उनकी काव्य प्रवृत्ति को ठीक ठीक समझने मे सहायक हो सकती है वह यह कि ब्रजेश जी का सारा जीवन ऐसे समय और वातावरण मे व्यतीत हुआ जिसके बीच रहते हुए वे रीति-भिन्न शैली की काव्य रचना कर ही नही सकते थे। उनका काव्य उनके जन्म और जीवन परिस्थितियों की सहज परिणति है। वे ईसा की १९वी शताब्दी के तृतीय चरण में पैदा हुए थे तथा २०वीं शती का आरभ होते-होते पूर्ण तरुण हो चुके थे। सन् १८७१ से १९०० तक का समय हिन्दी काव्येतिहास की दृष्टि से भी सर्वथा प्राचीनता का ही समय था। अंग्रेज़ी शासन था, रीवा रियासत के अंतर्गत सिलपरी नामक ग्राम मे जन्म लेकर गाँव और नगर - सिलपरी और रीवा - की संकीर्ण सीमा के बीच ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई। रजवाडों और रियासतों का जीवन था जो अंग्रेजी शासन मे चलने वाले नगरो और गांवों के जीवन से बहुत भिन्न था। जनता मे अंग्रेजी तथा आधुनिक ढग की शिक्षा-दीक्षा का विशेष प्रचार प्रसार न था। रजवाडों में राजभक्ति ही विशेष हुआ करती थी तथा राज्य की अपनी एक प्रकार की स्वतंत्र सत्ता और इकाई हुआ करती थी जिसके कारण देशभक्ति की अपेक्षा राजभक्ति का ही वातावरण वहाँ विशेष रहा करता था। हमारी रियासत ही सबसे अच्छी रियासत है तथा जो यहाँ नही वो कहीं नहीं और हमारा राजा ही सबसे अच्छा और पूज्य है - हम रीवा के है और रीवा हमारा है, इस प्रकार का वातावरण रहा करता था। रजवाडों में प्रजा की मनोवृत्ति राजभक्तिमूलक हुआ करती थी। राजा के जीवन, वेशभूषा, रहन सहन का प्रभुताकामी और राजकृपाकामी लोग अनुसरण किया करते थे। राजसंसर्ग लाभ में ही उन्हें जीवन का चरम लाभ गोचर हुआ करता था। बाहरी दुनिया की हवा ज़रा कम लगने पाती थी। राज्यो

नया है वही श्रेष्ठ है और जो पुराना है वह त्याज्य और उपेक्षणीय है अपनी इस वृत्ति द्वारा हम अपना कितना नुकसान कर चुके है इसकी कहानी कहने का यह अवसर नहीं है, संक्षेप मे यहाँ इतना ही कि आज हिन्दी की बडी बडी विश्वविद्यालयीन उपाधि धारण करने वाले लोगों मे भी रस और अलंकार विषयो का भी साधारण ज्ञान दुर्लभ है फिर रीति, ध्वनि , व्यजना आदि की शास्त्रोक्त गहराइयो तक जाना तो सर्वथा अकल्पनीय ही है किंतु ब्रजेश जी इन गहराइयो में गोता लगा चुके थे तथा ध्वनि, व्यंग्य, अलकार आदि सबधी सूक्ष्मज्ञान उनके लिए हस्तामलक सा था। ऐसी स्थिति मे ब्रजेश जी के काव्य पाठक से एक विशेष स्तर पर काव्यरीति विषयक ज्ञान वह प्रथम अपेक्षा है जिसके बिना उनके काव्य के सबध मे कुछ भी कहना बेकार है।

शृंगार काव्य

अब हम संक्षेप मे उनकी कविता की चर्चा करेगे और जैसा हम कह चुके है हमारा वक्तव्य उनकी तीन कृतियो शृंगार-शिरोमणि, रस-रसाग-निर्णय और मोहन-चरित्र-माला तक ही सीमित रहेगा। जो भी हमारा कथ्य है उसके आधार-स्वरूप ग्रंथ उक्त तीन ही है। 'रस-रसांग-निर्णय' ब्रजेश जी का रस निरूपण संबंधी ग्रथ है जिसमे प्रधान रूप से शृगार रस का ही समस्त रसावयवो समेत वर्णन हुआ है, गौण रूप से अन्य रसो का भी निरूपण हुआ है। शृंगार-शिरोमणि में रसराज शृंगार के कारणभूत आलंबन नायक नायिका मे से नायिका का ही विस्तृत वर्णन मिलता है। नायिका के समस्त महत्वपूर्ण भेदोपभेदों के निर्वचन के लिए ही यह काव्य लिखा गया है। इस प्रकार उभय रीतिग्रंथो के माध्यम से रस भेद और नायिका भेद की बँधी बँधाई लीक पर ही ब्रजेश की कविता कामिनी नृत्य करती चली है। शृंगार रस की अभिव्यजना ही उभय ग्रथों की अधिकाश रचनाओं का प्रधान लक्ष्य रहा है।

शृंगार के स्थायी भाव रति की स्थिति तथा उसका उद्रेक रोचक ढंग से एक अकुरित यौवना मे दिखलाया गया है जो चार दिन मे ही केलि कथाओ में रुचि लेने लगी है तथा घूँघट की ओट मे प्रिय की दृष्टि से अपनी दृष्टि मिलाने लगी है ; उसकी बातो और मुस्कान मे विशेष विनोद और सरसता आ गई है। रीति या प्रणय की उत्पत्ति गुणश्रवण, चित्रदर्शन, स्वप्नदर्शन और प्रत्यक्षदर्शन द्वारा वर्णित हुई है। जिस दिन से नायक के रूप और गुण की कहानी तारुण्यलब्ध नायिका के कानो मे पडी है वह किस कदर रतिमती, मुग्ध और विमोहित हो उठी है। उसमें जो प्रेम जीवंत हो उठा है उसकी कहानी इस छंद मे सुदरता से कही गई है -

व्याकुल सी ह्वै रही विमोहित बिकानी बाल
बैठी बिलखानी सी न जानी केहि भान मैं
कहत ब्रजेश मुरझानी माल मालती सी
मति उरझानी मनो मदन गोपाल मैं ॥
जा छिन तैं माधुरी तू मूरति बखानी बलि
ता छिन तैं सूरनि समानी मन प्रान मैं।
को कहै कहानी भई अकह कहानी दशा
कान्ह के स्वरूप की कहानी सुनि कान मैं ॥
(रस-रसांग-निर्ण

अन्य रसशास्त्रोक्त विधियो से भी प्रेम का जो उद्रेक दिखाया गया है उसमे पर्याप्त हृदय हारिणी शक्ति है -

र्शन -

समुझै न सुनै न गुनै कछु ज्ञान धुनै शिर सूतरी सी ह्वै गई।
नहिं बोलती ही नहिं खोलती नैन विथा अनुभूतरी सी ह्वै गई।
मन ही मैं विचारि ब्रजेश छटा छन ही मैं अनूतरी सी ह्वै गई।
लखि श्याम को चित्र विचित्र विचित्रिनी चित्र की पूतरी सी ह्वै गई।
(रस-रसांग-निर्ण

र्शन -

श्याम मिले सपने मैं सखी पहिले की समान न भागि परी मैं।
सौतिन के मुख मैं मसि कै हँसि कै उर मैं अनुरागि परी मैं।
कौन कथा कहिए कुविथा की वृथा विरहागि मैं पागि परी मैं ॥
लागि परी गरे ज्यों ही हरे हरे त्यों ही अभागिनी जागि परी मैं ॥
(रस-रसांग-निर्ण

दर्शन -

आय गये घनश्याम इतै उतै राधिका आई महामुदमाति है।
देखत ही छवि मैं छकिगे दोऊ पंथिन से थकि गे रसराति है।
ठाढे ठगे से पगे से ब्रजेश दशा नहिं दोहुन की कहि जाति है।
प्रेम सों पीवैं पियूष प्रभा तऊ नैनन की नहिं प्यास बुझाति है ॥
(रस-रसांग-निर्णय

वि ब्रजेश

इसके पश्चात आलबन के रूप और गुण, आचरण और कर्मो आदि के वर्णन की दृष्टि से हमे शृगार-शिरोमणि के पृष्ठ उलटने होंगे जो वास्तव मे नायिका-भेद का ग्रथ है। नायक के चित्रों और वर्णनो की अपेक्षा नायिका के रूप-गुण-कर्म की विभूतियो का ही अंकन विशेष हुआ है। नायक के वेश और शोभा का वर्णन एकाध छंदो मे ही देखा जाता है -

कुंडल कलित मनि मंडित मुकुट मंजु
भृकुटी कुटिल प्रभा पीत पट छोर की।
कहत ब्रजेश तैसो चन्द्र मुख चंद्रिका की
चूनर की चारुता चकोर दृग कोर की।
वेनु वनमाल भाल तिलक अलक सोभा
नासिका मुकुत नथ नुपूर के सोर की।
योवन की जोन्ह की जवाहिर की जेवर की
जोति की जरी की जेब युगुल किशोर की॥
(शृंगार-शिरोमणि)

और एकाध छंद मे उनकी शोभा के प्रभाव का बखान हुआ है -

वृन्दावन गैल ह्वै गई हौं नंदगॉव काल्हि
मिलि श्याम छैल सो बिकानी छवि जाल मैं।
कहत ब्रजेश तबही तैं मतवारो मन
न्यारो नहिं होत लागो मदन गोपाल मैं।
मंद मुसकैबो बिसरै न वतरैबो वह
बॉसुरी बजैबो धरि अधर प्रवाल मैं।
कौन सुरझावै सुरझाइबो कठिन आली
नैन उरझे हैं वनमाली वनमाल मैं॥
(शृंगार-शिरोमणि)

इस प्रभाव की मोहक वर्णना द्वारा भी प्रकारान्तर से कवि का कथ्य सौदर्योत्कर्ष निदर्शन ही जान पडता है। नायक की अपेक्षा नायिका की विभूतियों का वर्णन अधिक विस्तार से किया गया है। कभी तो स्फटिक महल मे उसके शृगार प्रसाधनों से युक्त रूप छटा का, उसकी विशिष्ट गति का वर्णन किया गया है और बताया गया है कि उसने अपने लोल और चचल नेत्रो को कज्जल कलित कर रखा है, स्वर्णजटित वस्त्रो और आभूषणों से अपने को सजा रखा है और स्वर्ण जैसी ही उसकी दीप्ति है तथा रूप के गर्व से उसकी गति मे भी इतराहट है। कवि की उक्ति है कि वह प्रशस्त यौवना विद्युत जैसी आभा से परिपूर्ण है तथा समस्त जग के लिए स्वस्तिमयी है। कभी सद्य स्नाता

के रूप मे उसकी आकर्षण भरी छवि आकी गई है जिसमे वह अपने केशो के जल निथारती हुई चित्रित है इस चित्र मे उसके अगो की गोराई और स्नानोत्तर मुद्र विशेष का चित्रण ही विशेष दृष्टव्य है वेणी सजा कर द्युतिमयी उन्नत यौवना का ज चित्र कवि की कल्पना मे आता है उसे उसने कविता मे इस प्रकार अंकित किया है

दर्पन दरी मैं खरी सुंदरी दरप भरी
कंदरप कैसी परी बाँधि गुन बेनी के।
जगमगे योवन जवाहिर जटित अंग
जर कसे वसन ब्रजेश वर श्रेनी के।
मध्य मैं उरोजन के रोमावली राजै मंजु
त्रिवली बलित भ्राजै नाभि सुख दैनी के।
मानो द्वै कलिंदन तैं कल्पित कलिंदी कढि
मंडित करति कांति कुंड मैं त्रिवेनी के ।।

(श्रृंगार-शिरोमणि)

तारुण्य का आगमन भी अनेक छंदों में तरह तरह की उक्तियो द्वारा वर्णित हुआ है - उसकी लक क्षीणता प्राप्त करती जा रही है, गति मे मदता आती जा रही है, दृष्टि मे पैनापन समाता चला जा रहा है तथा अनायास ही हर अकुरित हुआ पड रहा है। यौवन का आगमन उसमें तरह-तरह के हाव-भावों को जागृत करता है। उससे सारस युगल की क्रीडा प्रियतर लगने लगती है, गयदो की गति को नया आकर्षण मिलता है, दर्पण मे देर तक अपनी छवि देखते रहना विशेष रुचिकर प्रतीत होता है तथा चद्रमा की ओर वह स्थिर दृष्टि से निहारा करती है। यही नहीं अपने अगो को भी, वेशभूषा को भी वह अकथनीय बेचैनी के साथ सँभालती सँवारती रहती है -

सारसनैनी सखीन बचाय कबौं कर सारस लै चित चोरति।
आरसी सारसी इन्दु ब्रजेश गयंदन मैं कबहूँ मति दोरति।
बंद मैं कंचुकी के नवला नित बंद नये नये नेह सों जोरति।
घेर करैं घर की तऊ घूमि घरी घरी घाँघरी बाँधति छोरति।।

(श्रृंगार-शिरोमणि)

प्रकृति मे उसे नई, अकथ और अभूतपूर्व रमणीयता की प्रतीति होने लगती है -

माधुरता माधवी मैं है गई ब्रजेश औरै
कालिह ही तें मंदगति है गई करिंद की।
औरै भाँति कोकिल कपोत कीर औरै भाँति
औरै भाँति इन्दुदुति औरई फनिंद की।

मे जीवन किसी सीमा तक अधिक सुखद भी था क्योंकि वहा चीजे अधिक सस्ती थी और स्थानीय उत्पादन की वस्तुएँ तो बाहर जाने ही नही दी जाती थीं परिणामस्वरूप रियासतो मे लोग पर्याप्त सुखी और सतुष्ट थे। बाहर के लोग और बाहर की वस्तुएँ या विचारधाराएँ उनकी रियासतों में आएँ ऐसा वहाँ के लोग विशेष पसंद नहीं करते थे। अपने राजा की ही वीरता, उसी का ही साहस, उसी की कार्यावली और गुणावली का गान वहाँ का जीवन होता था। घर-घर, गली-गली, बैठक-बैठक में रियासत का राजा तथा उसके एक एक कार्यकलाप ही चर्चा का विषय हुआ करते थे। जो व्यक्ति जितनी ही आयु का होता वह अपने रियासत के राजवश की महिमा, शौर्य और प्रताप की उतनी ही पुरानी कहानियाँ सुनाता। अंग्रेजी शिक्षा दीक्षा का विशेष चलन नहीं था। एक रियासत मे गिने चुने स्कूल-कॉलेज होते थे और उनमे प्राय सम्पन्न वर्ग के मुट्ठी भर लोग ही पढते थे। हाई स्कूल स्तर की शिक्षा बहुत ऊँची शिक्षा मानी जाती थी और रीवा रियासत के शिक्षाकामी तरुण प्रयाग और काशी जाकर जब कोई बडी उपाधि उच्चतर शिक्षा की ले आते थे तो इसे बहुत बडी बात समझा जाता था। सर्वसाधारण मे सुख और सतोष तो था किंतु निर्धनता भी पर्याप्त थी। ऐसे वातावरण के बीच ब्रजेश जी का जन्म हुआ था और आरभिक जीवन व्यतीत हुआ था फलत· विशद साहित्यिक ज्ञान की वहाँ कोई गुजाइश न थी। ब्रजेश जी मे कवित्व शक्ति और काव्य प्रेम जो था वह वशानुगत था। उनके वश मे कवि ही कवि होते आए थे - कवि, पडित और आचार्य। एक मे एक धुरधर और प्रसिद्ध। ब्रजेश जी अपने आप को साहित्यदर्पण के प्रसिद्ध रचयिता महापात्र विश्वनाथ का वशज बतलाते थे तथा वे स्वयं अपनी वश परम्परा के सबंध में लिख गए हैं कि नरहरिनाथ, हरिनाथ, विक्रम, उदयनाथ (कवीन्द्र), सेनापति, बेनी, नीलकठ, शिवनाथ, सभाराम, अजबेश राम, महासुखराम और शीतलेश प्रभृति कवि, पडित और आचार्य उनके पूर्वज हो गए है। शीतलेश जी रीवा के महाराज व्यकटरमणसिह और गुलाबसिह के राजकवि रह चुके थे। इन्ही शीतलेश के पुत्र थे ब्रजेश जी। इस प्रकार कवित्व शक्ति इन्हे वश परपरा से प्राप्त थी। इनके पूर्वज कवि राज्याश्रय में रहते हुए राज प्रशस्ति परक एव लक्षणानुसारी शृगार काव्य लिखा करते थे तथा रीतिकवियो ने जिन जिन प्रवृत्तियों को लेकर काव्य रचना की उन्हीं का अनुसरण इनके भी पिता पितामह कर गए थे। इस प्रकार ब्रजेश जी को कवित्वशक्ति और काव्य दिशा दोनो ही पैतृक परम्परा से प्राप्त हो चुकी थी। जिस जीवन स्थिति और वातावरण मे वे पैदा हुए और बढकर तरुण हुए उसमे वे उसी पद्धति की काव्य रचना कर सकते थे जिसकी परम्परा न केवल उनके पूर्वज वहन करते आ रहे थे वरन लोक और भाषा काव्य जगत मे दीर्घ काल से चली आ रही थी। नैसर्गिक शक्ति और वश परम्परागत कवि वृत्ति की दिशा ऐसे वातावरण और जीवनगत परिस्थितियों मे बदल कर दूसरी तो हो ही नही सकती थी इसलिए ब्रजेश जी को एक ही काम करना रह गया था और

वह यह कि वे अपनी वश परम्परा प्राप्त कवित्व शक्ति का विकास और सवर्धन करते यह कार्य भी उन्होने अपनी परिस्थितियो की सीमाओ मे रहते हुए किया और अच्छी तरह किया। जब वे दस वर्ष के बालक थे तभी से काव्य ग्रथो मे रुचि लेने लगे थे तथा इनके पिता ने इनके काव्यानुराग को प्रवर्धित किया। उनके सहारे इन्हे भाषा काव्य तथा काव्यशास्त्र दोनो का सम्यक ज्ञान हुआ। सस्कृत के कुछ ग्रथ इन्होने निपनियाँ(रीवा) के प्रसिद्ध पडित गौरीशकर जी से पढ़े और इस प्रकार लगभग २० वर्ष की आयु तक इन्होने ब्रजभाषा के १४ और सस्कृत के ४ ग्रंथ कठस्थ कर लिए। कवि कर्म और रीतिग्रथ प्रणयन दोनो के लिए यह तैयारी थी जो इन्होने की। छन्द बाधने की सामर्थ्य १२ वर्ष की ही आयु मे इन्हे हो आई थी। काव्य के गूढ़ तत्वो पर और भी अधिक विचार-विमर्श के लिए इन्होने कुछ देशाटन भी किया तथा मेरा विचार है कि काव्यमर्म की चर्चा के लिए ये प्रयाग, काशी, कानपुर, अयोध्या आदि नगरो मे अवश्य गए होगे जहाँ ब्रजभाषा काव्य के अनेक रचयिता और काव्यशास्त्री इन्हे मिले होगे। ब्रजेश जी कहा करते थे कि उन्होने भारत-भ्रमण किया और काव्य के तत्वो और उपकरणो को लेकर शास्त्रार्थ करते फिरे। शास्त्रार्थ से रीवा के सीमित और संकीर्ण वातावरण मे इन्हे संतोष न होता था इसीलिए ये देशाटन और शास्त्रार्थ दोनों ही करते फिरे। काव्य शास्त्र के तत्कालीन दिग्गजों से इन्हें संतोष मिला होगा। भारतेदु मण्डल के कवियो से भी इनका सपर्क अवश्य हुआ होगा। लगभग ६ वर्ष के देशभ्रमण और शास्त्र चर्चा के अनतर ये रीवा वापस लौटे। इस देशाटन ने इनके काव्यशास्त्र ज्ञान को पुष्टि और कवि प्रतिभा को निखार प्रदान किया होगा, इसमे सदेह नहीं। लोकज्ञान का भी यह अचूक अवसर रहा होगा। आचार्य भिखारीदास ने कवि व्यक्तित्व के निर्माण मे तीन बातों का योग आवश्यक माना है और वे तीनों ही बाते ब्रजेश जी को लब्ध थीं - कवित्त रचना की शक्ति इनके जन्म नक्षत्र मे ही विधि-प्रदत्त थी, सुकवियों से इन्होने काव्यरीति का ज्ञान प्राप्त किया ही था और रह गई लोक सबधी जानकारी वह भी दीर्घकालीन देश देशातर भ्रमण के कारण इन्हे सुलभ हो कर ही रही। बस फिर क्या था ब्रजेश की कवित्व-शक्ति निर्बाध रूप से कवित्त-सवैयों-दोहों आदि मे मूर्त्त होने लगी। ये अपने पिता शीतलेश जी के समय से ही रीवा के राजदरबार मे जाने आने लगे थे तथा समय-समय पर काव्यपाठ भी करते रहे होंगे। आगे ये बघेलखण्ड मे रीवा तथा बुदेलखण्ड में ओरछा नरेश वीरसिह जू देव के राजदरबारों की शोभा हुए। राजकवियो जैसा शील स्वभाव इन्हें मिला और आचार्य कवियों जैसी मनस्विता और सहृदयता। ब्रजेश जी काव्यप्राण जीव थे और कविता सुनने सुनाने का इन्हे ऐसा आकर्षण था कि ये रोग और आयु जन्य अशक्तता की भी अवहेलना कर दिया करते थे। इनकी चर्चा का विषय एक ही रहता था-काव्य। वाग्देवी की उपासना, कविता का ही सजाव सभार इनका नित्य कर्म था। काव्य की ऐसी उपासना करने वाले काव्यप्राण कवि अब तो देखे भी नहीं जा सकते। ब्रजेश जी को विधाता ने जीवन के लिए ८६ वर्षों की दीर्घ

अवधि प्रदान की थी तथा उन्होंने इस वरदान को व्यर्थ नहीं जाने दिया उनकी यश काया आज भले ही उतनी जीवत न हो भविष्य मे उसकी दीप्ति अधिकाधिक होती जाएगी, इसमे मुझे सदेह नहीं। ब्रजेश जी ने निरवधिकाल के प्रशस्त भाल पर ये ११ अंक लिख दिए है जो अमिट हो गए हैं - रस-रसाग-निर्णय, अलंकार-निर्णय, शृगार-शिरोमणि, रमेश-रत्नाकर, विश्वनाथशरण-भूषण, माधव-विलास, विरह-वाटिका, सोरठ-रामायण या सोरठ-शतक, शांत-शतक, मोहन-चरित्र-माला और ब्रजेश-विनोद।

कृतित्व का आकलन

ब्रजेश जी के सभी ग्रथ मेरे देखने मे नही आए किंतु रस-रसांग-निर्णय, शृंगार-शिरोमणि, मोहन-चरित्र-माला इन तीन ग्रथो को देखने का ही नहीं ध्यानपूर्वक पढने का भी अवसर मुझे मिला है। इन तीनो के सबध में पृथक पृथक चर्चा तो मै अन्यत्र कर चुका हूँ किंतु सप्रति उसी अध्ययन के आधार पर ब्रजेश के काव्य के संबंध मे मै थोडा सा प्रकाश डालना चाहूँगा। स्थूल रूप से अनेक ग्रथों की विषयवस्तु इस प्रकार है-रस-रसाग-निर्णय मे रस की विवेचना है, शृंगार-शिरोमणि में नायिका भेद का तथा अलकार-निर्णय, रमेश-रत्नाकर और विश्वनाथशरण-भूषण काव्यशास्त्राचार्य ब्रजेश के अलंकार-विवेचन के ग्रंथ हैं। माधव-विलास मे सभवतः इन्होंने अपने गुरु का प्रशस्ति गायन किया है। विरह वाटिका में विप्रलंभ की ही रचनाएँ सकलित होनी चाहिएँ तथा सोरठ रामायण या सोरठ शतक में राम चरित्र १०० सोरठों में वर्णित हुआ होगा अथवा इस कृति मे सौ के लगभग स्वतंत्र छद होगे। शात-शतक मे सौ के लगभग निर्वेदभाव मूलक छद लिखे गए होगे तथा मोहन-चरित्र-माला में महात्मा गॉधी का वृत्त कवित्त सवैयो मे संक्षेपतः प्रस्तुत किया गया है। ब्रजेश-विनोद सभवतः समय समय पर लिखे गए उनकी फुटकल रचनाओं का संग्रह ग्रथ होगा। इस प्रकार परिमाण और विषय वैविध्य की दृष्टि से भी ब्रजेश जी की काव्य-सृष्टि प्रचुर ओर महत्वपूर्ण है।

जैसा कि हम आरंभ में कह आए है ब्रजेश की कविता रीत्यानुसारी कविता है, उसका पूरा-पूरा आनद लेने के लिए रीतिशास्त्र (रस, अलंकार, नायिकाभेद, ध्वनि, शब्दशक्ति आदि) का ज्ञान आवश्यक है। लक्षणानुधावन करते हुए ही उन्होंने अपने पॉच विशद तथा महत्वपूर्ण ग्रंथों का प्रणयन किया है, उनकी कविता रीति की उँगली पकड़ कर चली है इसलिए उनकी कविता का जो चमत्कार है वह कवि की अनुभूति की रसात्मक परीणति उतनी नही जितनी कि वह रीतिबोध का परिणाम है। उनका वर्ण्य भावमग्न करने की अपेक्षा चमत्कृत करने वाला अधिक है। उनके वर्ण्य तो रीतिबद्ध होने के कारण पूर्व निर्धारित ही है, जो कुछ उन्हे कहना है उसका तो पूर्ण संकेत लक्षण स्वय करते चलते हैं। पूर्व निश्चित वर्ण्य को ही वे वर्णित करते रहे हैं, बस जिन शब्दों मे उन्हें बाँधना है और जिस

शिल्प मे उन्हे सवारना है उसी पर विशेष ध्यान देना रह जाता है। ब्रजेश जी के कवि-कर्म के इस प्रकार दो पक्ष हो जाते है एक तो रीति ज्ञान दूसरा कवित्व-शक्ति। प्रथम का सपादन तो उन्होने भाषा और सस्कृत के परम्परागत रीतिशृंगार का अध्ययन ओर कठस्थीकरण करके किया। इस रीतिज्ञान को उन्होंने देशाटन और शास्त्रार्थ द्वारा परिपुष्ट भी किया। रह गई कवित्व-शक्ति-इसे उन्होने परम्परा से प्राप्त किया - काव्य के एकांत अध्ययन, अनुशीलन, श्रवण, उसकी चर्चा तथा नियमित अभ्यास द्वारा विकसित किया और प्रौढ बनाया। इन दोनों प्रकार के सामर्थ्यो से सम्पन्न होकर उनकी कविता दीप्त हो उठी है इसमें संदेह नही। यदि कोई चाहे तो आक्षेप कर सकता है कि ब्रजेश जी की कविता घिसी-पिटी कविता है, उसमें सामंती मनोवृत्ति का पोषण है, वह विलासकामी महापुरुषो का मनोविनोद मात्र है। अशत: ये बाते सच हैं। अंशत: इसलिए कि केवल शृंगार और परम्परागत विषय ही उनके सम्पूर्ण काव्य में ग्रहीत हुए हों ऐसी बात नहीं है। मैंने स्वय समसामयिक विषयों पर उनके कवित्त सुने हैं, रियासतों के विलयन पर, विन्ध्यप्रदेश के विलयन पर, उन्होंने कवित्त लिखे, महात्मा गाँधी के उज्ज्वल कर्मों का वृत्त-वर्णनात्मक शैली पर मोहनचरित्रमाला मे गुणानुवाद किया तथा अपने देश प्रेम की भावना का पूर्ण परिचय दिया तथा गुरु महात्म्य, वैराग्य, राम चरित्र आदि विषयों को काव्य में अंगीकृत किया है किंतु ब्रजेश जी की वृत्ति प्रधानत: रीत्यानुसारी कवि की वृत्ति थी तथा वे अपनी रचनाएँ कवि-गोष्ठियो या सम्मेलनो में सुनाते हुए रस, ध्वनि, अलंकार आदि का भी निर्देश करते चलते थे जिससे लोग इन विषयों को जानकर उन रचनाओं का सच्चा सदर्भ समझ सके और पूरा आनंद ले सके। जो रीति के इन उपकरणो से अनभिज्ञ रहते थे वे भी शब्द नाद की सुष्ठु योजना के कारण, मनोहर सानुप्रासिक पदावली के कारण तथा उभरते हुए सुदर भाव चित्र के कारण और छंद के अंतिम चरण पर पहुँचते पहुँचते मूर्त्त हो उठने वाले काव्य सौंदर्य के कारण मुग्ध हो उठते थे और जिन तथाकथित हिन्दी काव्यप्रेमियो में परम्परागत काव्य को समझने की कोई तमीज न होती थी तथा ब्रजभाषा लेशमात्र भी जिनके पल्ले न पडती थी उनमें से भी कुछ जन कवि की अवस्था, काव्यप्राणता और उसकी सामर्थ्य पर मुग्ध होते थे किंतु एक वर्ग ऐसा भी रहता था विशेषत: अज्ञ तरुणो और नई रौशनी के हिन्दी द्रोही अफसरो का जो उन्हे भाट कवि कहकर उनकी हँसी उडाता था। मैं समझता हूँ कि ब्रजेश जी की कविता को समझने के लिए, उसका रसास्वादन करने के लिए काव्य पाठक से एक विशेष प्रकार की सामर्थ्य की अपेक्षा है, उसके बिना ब्रजेश की कविता को पढने सुनने या उसकी चर्चा करने का कोई अर्थ नहीं है। जो अभ्यास, काव्यशास्त्र ज्ञान, रीति निष्णातता वर्षो के कठिन एवं एकनिष्ठ श्रम साधना द्वारा कवि ने अर्जित की तथा उस ज्ञान को ७०-८० वर्षो तक वहन करता रहा और उसे ईश्वर कृपा से अपने एकादश ग्रंथों में मूर्त रूप दे सका उसके कृतित्व पर हल्के फुल्के ढग से अज्ञ जनों द्वारा की गई टीका टिप्पणी का कोई अर्थ नहीं हो सकता। जो कुछ

रूप का यह सम्मोहन इतना प्रबल और सघन होता है कि आये दिन प्रेमिका की यही दशा होती रहती है। जब भी कृष्ण दिख जाते हैं उसके अंग-अग उसके नही रह जाते, अंग-अग की दशा देखने योग्य हो जाती है, अजीब विमुग्धता और शिथिलता उसे घेर लेती है। अनुभावो के व्याज से प्रेम की मनोरम अभिव्यक्ति देखिए-

अंग पसीजत से पुलकैं चकचौंधित आँसुन सों चकि जाति है।
रोम उठैं बदलै दुति देह की जोन्ह सी जोति लखे जकि जाति है।
बोलति बैन भरे थहराद ब्रजेश विमोहित है थकि जाति है।
गोकुल मैं कबौं गैल मैं शैल मैं छैल की देखि छटा छकि जाति है।।

(रस-रसांग-निर्णय)

प्रेम मे यही दशा उधर कृष्ण की भी दिखाई गई है। अचानक ही कहीं से वह अनोखी रूप वाली दही ले कर आ जाती है और नायक कृष्ण के तन को अतन तण्य से तपाकर चली जाती है। उसके आँखों की मरोरें उसके मन को मरोड डालती है। दूसरे दिन आने की सौगंध खाकर उसका जाना कृष्ण के हृदय मे एक अनोखी और अकथ हूक उठाए बिना नही रहता -

नैन की मरोरनि उदै करि मरोर उर
जानै कौन ओर दुख दै करि चली गई।
ही तल हितै करि बितै करि वियोग अवै
मोहिं दुचिते करि चितै करी चली गई।।

(रस-रसांग-निर्णय)

इस प्रकार प्रेम की जागृति दोनों पक्षो मे गोचर होती है जिसका मूलाधार है रूप का आकर्षण और रूप की रसिकता। यह दोनो पक्षों मे है और एक दूसरे के लिए है तथा जैसा आरभ मे कह चुके है, ये प्रेम वर्णना प्रधानतः राधा और कृष्ण या गोपी और कृष्ण को लेकर ही हुई है। दोनों ओर प्रेम किस प्रकार पलता है इसकी विवृति के लिए इस छद पर दृष्टिपात कीजिए -

जगमगें दोहुन के भूषन जराऊ पट
दोहुन के जोति के तमासई रहत हैं।
कहत ब्रजेश दोऊ सुख सों समेटिबे को
भुज भरि भेंटिबे को पासई रहत हैं।
दंपति सुजान दोऊ दोहुन के प्रान दोऊ
रूप के निधान रस एसई रहत हैं।

प्रेम सो करत पान नैन तऊ टोहुन के
पानिप प्रभा क नित प्यासई रहत हैं ॥

(शृंगार-शिरोमणि)

ललक की यह उभयपक्षीय व्याप्ति ही इनके प्रणय को वास्तविक सरसता प्रदान करने वाली है। एक अनूढा की कुँआरी आकांक्षाओं का चित्र देखिए। उस पर कृष्ण की विशेष कृपा हे, वह भी कृष्ण के प्रति अनुरागमयी है। ऐसी स्थिति मे उसकी आकाक्षा और दूसरी हो ही क्या सकती है-

चोरिन मैं ब्रजगोरिन के ब्रजखोरिन मैं करि कै नित फेरे।
जे कबहूँ लहि घात ब्रजेश गरे लगि जात हैं साँझ सबेरे।
जो विधि ऐसी करै विधि तौ सखि भाग सोहाग सबै विधि नेरे।
व्याह बनै वेई मोहन सों अरु नाह बनैं वेई मोहन मेरे ॥

(शृंगार-शिरोमणि)

कृष्ण अचगरी करते हैं तो क्या औरों के बीच उसी पर तो अपनी दुष्प्राप्य अनुकम्पा की वृष्टि करते हैं और यह उसका मनचाहा भी है - अब देर क्या है विधाता कहीं अनुकूल हो जाय तो उसका जीवन ही न सार्थक हो जाय। इसी सीधी अभिलाषा की मनोहारिणी व्यंजना ऊपर हुई है। गोपिका की आसक्ति पर्याप्त कोमल रीति से पूरी मधुरता के साथ व्यक्त हुई है और इसी में कवि का कौशल सन्निहित है। दोनों पक्षों में प्रेम का क्रमिक विकास हो चलता है और लोगों के बीच इसकी चर्चा भो होने लगती है। कृष्ण को लौकिक बाधा बंधनो का डर नहीं पर गोपिका को तो है। उसके मनोभावो की समीक्षा तो ज़रा कीजिए ; वह कहती है कि लोगो की चवाइयों का डर तो होना ही चाहिए, मैं कब कहती हूँ कि कृष्ण अपने मनोभावो को जाहिर न करे। ब्रजगाँव मे सघन छायादार निश्चिंत मिलन के योग्य एकात स्थलों की क्या कुछ कमी है पर समझ में नही आता कृष्ण बार-बार मेरे घर की ही गली के चक्कर क्यो लगाते है और मुरली में मेरा नाम जाने क्यों बार-बार लेते हैं। लोक की लज्जा तो रखनी ही होगी। इतना कुछ कहकर भी आप देखेंगे कि बहुत से भाव गोपिका की उक्ति के पीछे से अब भी झाँक रहे हैं -

चौचंद चारहु ओर चलै न चवाइन को डर लावत काहे।
हैं ब्रजगाँउ मैं ठाउँ घने पै ब्रजेश नहीं मन लावत काहे।
घेर करैं घर की घनश्याम घरी घरी मैं घर आवत काहे।
वै मुरलीधर नाम हमारो भला मुरली मैं बजावत काहे ॥

(शृंगार-शिरोमणि)

विविध प्रेम प्रसंग

यह प्रेम कृष्ण के संग होने वाली विविध अवसरो की विविध प्रकार की भेटो मे गाढतर होने लगता है - कभी कालिंदी तीर पर भेट होती है जब कि वह आलियो के संग नीर भरने के लिए गई होती है। आँखो के कितने इशारे होते है, मन की कितनी ही ललक भरी भावनाओ का आदान प्रदान होता है - 'कालिंदी तीर मै नैन तुनीर तै सैन के तीर चलावति आडी।'

कभी कृष्ण उसे कुज मे अकेली पाकर अक मे भर लेते है। इस भेट के बाद अब ऐसी भेंट के बिना उसका जीवन दूभर हो उठता है। यह भेट प्रीति का नही बैचेनी का उदय करने वाली है -

काम कैसी बेटी प्रभा पुंजनि लपेटी काल्हि
कुंजन मैं भेंटी काहू भाँति भरि अंक वाम।
कहत ब्रजेश तबही तें भई व्याकुल सी
बावरी सी व्यथित बिकानी सी गई है छाम।
कहाँ जाउँ कासों कहौं कैसे कै मिलाऊँ वाहि
जागि सी परति विरहागि उर आठौं याम।
मिलिबो कठिन श्याम पति सों विपति महा
पास ही में पति है रहैगी पति कैसे राम॥
(शृंगार-शिरोमणि)

ऐसी ही एक भेंट और होती है चटसारिका में तथा बात कुछ और आगे बढती है-

खरी चटसारिका मैं लट खोले विराजि रही पट मैं दुति फूटि।
ब्रजेश अकेली अचानक पाय चवाइन की चरचा गई छूटि।
चलावत पानि उरोज पै ऐसी लई उपमा कवि मौज सौं लूटि।
वृषध्वज के गिरो माथ पै मंजु मनो मकरध्वज को ध्वज टूटि॥
(शृंगार-शिरोमणि)

कृष्ण अब उसे रोज़ छेड़ते हैं कभी किसी बहाने कभी किसी बहाने। कभी उसकी उँगलियो की अँगूठी ही देखने के बहाने उसे पकड लेते हैं और उसकी अँगूठी की प्रशसा करने लगते हैं, उसका मूल्य आँकने लगते है। गोपियाँ स्नेहमयी तो हैं पर प्रकट रूप से वह कुछ नहीं होने देना चाहतीं, कृष्ण से कोई भी व्यवहार नही रखना चाहतीं और इसलिए वह रोष के साथ कृष्ण से कहती है कि तुम्हे मुझसे क्या लेना देना, तुम अपने रास्ते जाओ -

ललना छोर न छाडत हौ छिगुना को छला लखि के छबि छावनो है
अति नीको बनो बड़े दामन को तो कहा तुमको कछु पावनो है
न दिखाइहौ नेकु न दैहौ ब्रजेश वृथा बकवाद बढ़ावनो है
परखाइहौं काहू जवाहिरी पै खरो खोटो जु पै परखावनो है ।।

(शृंगार-शिरोमणि)

राधा और कृष्ण के तरह तरह के खेल चलते हैं। गोपिका कभी वचनो की विदग्धता अपने प्रेमपूर्ण अभिप्रायो को कृष्ण के प्रति व्यक्त करती है और कभी क्रियागत ा के द्वारा -

(क) घेरि धन आए तापै निपट भई है साँझ
धन बन माँझ कुंज कालिंदी कगर की ।
तैसे गाँव गाँवन की और सब ठाँवन की
गोपन समेत गोपी गवनी सगर की ।
कहत ब्रजेश कासों बूझिए मते की बात
तुम सब जानो घात ब्रज के बगर की ।
दैहौं दान गोरस को आओ मम गोहन
बताओ ग्वाल छैल गैल गोकुल नगर की ।।

(शृंगार-शिरोमणि)

कोमल कंज से पानि मैं कंदुक कान्ह की ओर उछालि चली गई।
मालनि तोरि बिथोरि कै मालती लालन सो करि लालि चली गई।
चंपक के वन ओर ब्रजेश चितै करि चेटक डालि चली गई ।
घेर के घाँघरे की वह ग्वालि घरीक मैं घूँघट धालि चली गई ।।

(शृंगार-शिरोमणि)

इन बहानो और इशारो मे अपने आशयों को व्यक्त करने वाले प्रेमियो का जीवन और उल्लास से भरा होता है। वे नाना रूप और वेश धारण करते है, छद्मवेशो नते है। मन को मोहने और रमाने के नाना उपाय वे काम मे लाते है। गोपिका वैद्य का वेश धारण करके कृष्ण के समीप आती है और कभी कृष्ण का ही वेश करती है -

कहत ब्रजेश बहुरूपिनी विचित्र यह
रूप सों लहैंगी बकसीस मनभाई है।

कवि ब्रजेश

लहलही लागी लफवारी लता होन लगी
पागी तऊ मालती मैं मति है मल्दि की।
निकसन लागी हैं कली द्वै अरविंद की औ
बिकसन लागी हैं कली द्वै अरविंद की॥
(शृंगार-शिरोमणि)

प्रकृति मे जो और ही रमणीयता कथित हुई है वह प्रकृति के किसी अभिनव विकास या ऋतु-सभार के कारण नहीं है वरन नायिका के तन मन की जो ऋतु बदल गई है उसका परिणाम है, इस पूरी सहृदयता के साथ उक्त छद मे दिखाया गया है। जैसे-जैसे तारुण्य उसके तन मे प्रवेश पाता जाता है उसकी रुचियो मे, मन मे, स्वभाव मे परिवर्तन आता जाता है। उसमे दूसरी ही आभा और छटा लहलहाने लगती है। उद्यान मे एक से एक सुंदर फूल खिलते है पर सभी उसकी रुचि पर नही चढते -

मॉजै न मोगरा मालती हू अनुरागै न कंज कदंब के रूखन।
निंदति केवरा कुंद ब्रजेश चमेलिन बेलिन मैं घने दूखन।
गेंदा गुलाब गुॅथे गुलदावदी हेरत ही गजरे लगैं सूखन।
अंग मैं चंपक रंग दुकूल विभूषति चंपक फूल के भूषन॥
(शृंगार-शिरोमणि)

आभूषणो से उसे विशेष प्रेम हो जाता है। तरह-तरह के शृगार मे मडित हो जब भी वह दुमहले पर या केलिभवन मे या कही भी पहुॅचती है उस की छवि छटा देखने ही योग्य होती है -

(क) घॉघरी घेर घने की बनी शिर ओढनी तैसी जराउ जराई।
छोटी नथूनी बड़े मुकतान की छोटे उरोजन की छबि छाई।
देखिए देखन जोग ब्रजेश सलोने स्वरूप की सुंदरताई।
द्वै महले पर वा दुलही नई द्वैज की ऐसी कला कढि आई॥
(शृंगार-शिरोमणि)

(ख) आज श्याम संग मैं विभासति सुघर श्यामा
सॉसति अनेक सहि लाज औ मनोज की।
कहत ब्रजेश रति रग्ज रति लाजै लखि
सोभा साज सौगुनी शृंगारन के मौज की।
केलि भौन कुंज मध्य जगर मगर जोति
फैलि रही फरस फनूसन के ओज की।

जोवन की जोन्ह की जवाहिर की जामिनी की
जेवर की जस की जमी की जरदोज की ॥
(शृंगार-शिरोमणि)

जिस नायिका मे इतना तारुण्य है, इतनी काति है, इतनी रूप छटा है, इतनी शृंगार प्रियता है वह नायिका और कोई नहीं श्री राधिका ही है। ब्रजेश की ऐसी नायिका अपनी सहचरियो मे बडी प्रिय है, वे उसे हर दम सँवारा ही करती है, उसका सिगार ही करती रहती है -

मज्जन कराय पहिराय पट अंजन दै
कंज खंज मीन मृग वारत ही रहतीं।
कहत ब्रजेश करि कंठ श्री कलित कंठ
छवि उपकंठ मैं निहारत ही रहतीं।
माल मुकतान की सुधारि सुखदेनी कबौं
बेनी गूँधि गूँधि बलिहारत ही रहतीं।
ब्रज सरदार श्याम-श्यामा सुख साधिका को
राधिका को सखियाँ शृंगारत ही रहती ॥
(शृंगार-शिरोमणि)

रूप गुण शील सौंदर्य सभी प्रकार से सम्पन्न राधिका अपने रूपगर्व को अनेक छदो में बडी सुदरता से व्यक्त करती है। ब्रजेश जी द्वारा नायिका के स्वरूप गर्व की अभिव्यक्ति करने वाले छद अत्युत्कृष्ट बन पडे है। एक छद में वह कहती है कि बडी बडी ऑखो वाली ब्रजनारियों के रूप के अभिमान को आज मै धूल मे मिला आई हूँ, आज मे वे अपने रूप पर घमंड करना छोड देंगी। एक रूपगर्विता ने दूसरी रूपगर्विता का मद चूर किया है। देखने की चीज यह है कि कितने उन्माद के साथ वह अपने रूप की आकर्षण क्षमता की चर्चा कर रही है। ब्रजेश की राधिका की उक्ति है -

बड़े-बडे रूप कहतीं जो तिनहीं को आजु
आपने अनूप रूप रासिन भोराई मैं।
कहत ब्रजेश बडी बेर लगि फेरि तिन्हैं
आनन तें घूँघट उघारि उरझाई मैं।
विविध विलासन के बलित विहँसि मंद
बिज्जु लौं विमल हास फाँसनि फँसाई मैं।

बडे बडे नैन सुनि बैन ब्रजनारिन के
बडे बडे नैननि निहारि आई माई मैं ॥
(शृंगार-शिरोमणि)

एक अन्य स्थल पर वह कहती है कि मेरी सखियॉ और सभी शृगार तो कर देती है सहर्ष और सोत्साह कर देती है परन्तु मेरी ऑखों मे काजल वे नही लगाती। यहॉ प्रकारान्तर से राधिका अपने नेत्रो की ही प्रशसा कर रही है। नेत्रो की तीक्ष्ण कटाक्षशक्ति का भय ही कारण है जिससे उसकी शृगार परायणा सहचरियॉ उसे अजन अजित भर नही करती और सभी शृगार प्रसाधनो से प्रसाधित तो कर देती है -

वास जरी के सजाय ब्रजेश अवास सुवास सुवासती केती।
भूषन अंग शृंगारती आपहि और शृंगारन की विधि जेती।
मो कर मैं कजरावटी दै कर जोरि निहोरि हहा करि लेती।
ये सखियान मैं कोऊ सखी अँखियान मैं मेरे न अंजन देती ॥
(शृंगार शिरोमणि)

ब्रजेश जी की इस उक्ति की रुचिरता और रोचकता का पूरा आस्वाद लेने के लिए सेनापति की इस उक्ति का स्मरण करना आवश्यक हो जाता है - 'काजर दै जनि ऐ री सुहागन, ऑगुरी तेरी कटैगी कटाछन।' लेकिन इन सभी उक्तियो से श्रेष्ठतर उक्ति तो वह है जिसमे राधिका अपने रूप पर कृष्ण के बेतरह मुग्ध होने का मगन हो हो कर वर्णन करती है। कृष्ण राधिका के रूप पर मुग्ध है और राधिका उनके मुग्ध होने पर मुग्ध है -

वृंदावन बेचन दही मैं जब जाँउ बीर
मेरो सुनि नाउँ नेह युत नियरात हैं।
त्यागि देत वेनु वनमाल कहूँ धेनु कान्ह
दान मिसि दौरि देखिबे को ललचात हैं।
कहत ब्रजेश अंग सौरभ सघन केश
बार बार बदन सराहि सकुचात हैं।
मेरी ओर हेरि हेरि भौंर बनि जात हैं
सु मोर बनि जात हैं चकोर बनि जात हैं ॥
(शृंगार-शिरोमणि)

राधिका के रूप सौदर्य को व्यंजित करने वाले वे छंद कुछ कम सरस नहीं हैं जिनमें राधिका के रूप के कृष्ण के हृदय पर पडे हुए प्रभाव का कथन कवि ने किया

है प्रभाव व्यजता के माध्यम से भी रूप का अभिव्यजन या परोक्ष रूप से प्रत्यक्षीकरण कराने वाले इन छदो का मूल कथ्य राधिका की रूप विभा ही है और कुछ नही

(क) जानै कौन जादू जंत्र कै गई निकुंजन मैं
लै गई लुभाय मन बेटी वृषभानु की ।
कहत ब्रजेश तब ही तैं बिन धीर श्याम
सहत शरीर पीर अतन कृपान की ।
डोलत न चैन सों न खोलत पलक नैन
बोलत न बैन को चलावै खान पान की ।
संग के सखान की न ब्रज के वृषान की
पखान की न सुधि भए मूरति पखान की ।।

(रस-रसांग-निर्णय)

(ख) मनमोहन आजु निकुंजन की मग आनि खरे तो खरे रहिगे ।
अति दीन कदंब की डारन मैं कर कंज धरे तौ धरे रहिगे ।
लखि राधिकै आवत लालची नैन ब्रजेश लरे तो लरे रहिगे ।
ब्रज की तजि आनि सबै दुख भानि भुजानि भरे तौ भरे रहिगे ।।

(रस-रसाग-निर्णय)

नायक और नायिका, कृष्ण और राधा के पारस्परिक प्रेम का वर्णन करने वाले छद अनेक है । किंतु इनमे धारावाहिकता का अभाव है । ये प्रेम वर्णना कविचित्त की सीधी निष्पत्तियाँ नहीं हैं, इनमें रीति और शास्त्र बीच मे धँसा हुआ है फलत. प्रेमभावना की मुक्त अभिव्यक्तियाँ तो है ही नही शास्त्र या लक्षण को सिद्ध करने वाले उदाहरणो का जमघट अवश्य है । इस सीमा को समझ लेने के बाद फिर उनकी रचनाओं के भावो और रसो का आनद लिया जा सकता है । बहुतेरे छदो में जो प्रीति कथित हुई है वह रूपदर्शन मात्र का परिणाम है चाहे वह नायक मे अकित हुई हो चाहे नायिका मे । यह मोहन के ही रूप की मोहिनी है कि उसे अपनी, अपने घर द्वार की, अपने लक्ष्य या गतव्य की, किसी की भी चेतना नहीं है -

मोहन रूप की आज ब्रजेश वै मोहन कौन सी मोहिनी डारी ।
नेह मैं मोहि रही तब तैं सुधि गेह की देह दही की बिसारी ।
भोर तैं भाँवरी देत फिरै भई साँवरी सूरति मैं मतवारी ।
आयु बिकाय गई मन बेंचि नई यह गोरस बेंचनहारी ।।

(रस-रसांग-निर्णय)

जौन काल्हि बाल आई वैद गुन माल बनि
आजु वही ग्वालिनि गोपाल बनि आई है ।।
(शृंगार-शिरोमणि)

कभी मन की मौज मे दोनो ही एक दूसरे का रूपवेश बना लेते हैं -

घॉघरी सामरी ग्वालिनि के कटि कामरी गोरे गुवाल के भावै ।
सामरी ग्वालिन के शिर ओढनी गोरे गुवाल के पाग सुहावै ।
वानिक वासन के बदले की ब्रजेश बिलोकत ही बनि आवै ।
सामरी ग्वालिन गावै हरे हरे बॉसुरी गोरो गुवाल बजावै ।।
(रस-रसांग-निर्णय)

वेश परिवर्तन का यह प्रसग और भी कितने मनोविनोदो तथा हास-परिहासो का सर्जन करने वाला होता होगा यह इस प्रसग की कल्पना करने से और भी प्रत्यक्ष होगा। प्रणय के भावो के इस प्रकार के उद्रेक के अवसर ज्यो-ज्यो अधिकाते जाते हैं उनके मनोभावो और मनोभवो दोनो मे अधिकाधिक आब आती जाती है। मिलन और उल्लास अब दोनो की दैनदिन चर्चा का अग हो गया है -

वृंदावन वीथिन ब्रजेश ब्रजवल्लभ को
बस कै विनोद के वलित बतराति जाति ।
मोरि मोरि मुख भ्रू मरोरि दृग जोरि जोरि
नासिका सिकोरि कोरि विधि इतराति जाति ।।
भावन के संग मैं सुभावन के संग मन
भावन के संग मैं मनोज मदमाति जाति ।
हरे हरे हार मैं हरति ही हरिन नैनी
हरे हरे हेरति हॅसति हरषाति जाति ।।
(रस-रसांग-निर्णय)

नायक और नायिका जब प्रेम के बंधन में बॅध जाते है तब उनके प्रेम की छटा दूसरी ही हो जाती है। नायक नायिका पर इतना रीझता है कि उसकी वाणी छोड दूसरी रागध्वनि की ओर उसकी कोई रुचि नही होती, उसके अधरो सी मधुरता किसी दूसरी चीज में नही मिलती, उसकी चाल से अधिक आकर्षक किसी की चाल नही लगती और उसकी अंग सुरभि सी सुरभि कस्तूरिकादि मे नही मिलती -

आवत केते प्रवीन नवीन न वीन ब्रजेश बजावन देत हैं।
त्यागत ऊख की माधुरता न पियूषहु के गुण गावन देत हैं।

चाल मरालन की न रुचै इत व्यालन हू को न आवन देत है
प्रीतम काहे कुरगन को मद अगन में न लगावन देत है

प्रेमी सब प्रकार से प्रिया पर निछावर है - खुद ही उसकी वेणी गुहता है, खुद ही मेहँदी लगाता है, खुद ही अग-अग की सज्जा करता है और खुद ही बडे-बडे मोतियो की मालाएँ ला ला कर पहनाता है -

बलि आपहि गूँथत बेनी सदा करि सूर सुता सरि सोतिन की।
मेंहदी रचैं प्रीतम ही सुनि कै दुति दीन सी रूप उदोतिन की।
सब अंग सँवारत वारत आपु ब्रजेश घनी मणि जोतिन की।
पहिनावत आप हि लाय कै लाल जी माल बडे बडे मोतिन की ॥

(शृंगार-शिरोमणि)

यह छद मतिराम के 'दुलही के चेरे' वाले सरस छद का स्मरण दिलाता है -

आपने हाथ सों देत महावर आप ही बार सँवारत नीके।
आपुन ही पहिरावत आनि कै हार सँवारि के मौलसिरी के।
हौं सखि लाजनि जाति मरी 'मतिराम' सुभाव कहा कहौं पी के।
लोग मिलैं घर घैरु करैं अबही ते ये चेरे भए दुलही के ॥

(मतिराम)

इस प्रकार प्रेम की वर्णना करते हुए कवि ने कितने ही सरस और मनोग्राही छद लिख डाले है परन्तु सच तो ये है कि कवि प्रेमवर्णन की अपेक्षा रीति निरूपण की जिम्मेदारी अधिक ओढे हुए है इस कारण रीति की आवश्यकता उसे पद पद पर सचेत करती रहती है और वह निर्दिष्ट पथ से इधर-उधर नही हिल पाता अन्यथा ब्रजेश सा प्रतिभा सम्पन्न कवि और भी उत्कृष्ट भाव राशियाँ दे सकता था। वैसे यह भी कहा जा सकता है कि ब्रजेश ने रीति की डगर यदि न पकडी होती तो फिर शायद कविता के क्षेत्र में ही न आते। जैसा कि हम दिखा चुके है वे परम्परागत काव्य संस्कारों से निर्मित हुए थे इसीलिए उसके प्रति बेवफाई संभव न थी। उसके प्रति वफादारी ही उनकी कवित्व शक्ति का और जो कुछ उनसे कविता में बन पडा है उसका कारण है।

रीति की जकड़न

अब प्रेम वर्णन के उस स्वरूप पर भी संक्षेप मे विचार हो जाना चाहिए जिनमे रीति की जकडन ही प्रधान है। वैसे तो ऊपर भी जिन छदो का हवाला दिया गया है वे भी रीति की खानापूरी के बतौर ही लिखे गए है परन्तु रीति पर दृष्टि रखे बिना भी

एक सीमा तक उनसे आनद प्राप्त हो सकता है किंतु ऐसी रचनाओं पर भी दृष्टि निक्षेप करने की आवश्यकता है जिनमें रीति की भारी जकडन है, जिनमें 'रीति' कवि पर हावी है, जिनमें कवित्व है तो रीति के कारण और नही है तो भी रीति के ही कारण। सच तो ये है ऐसी रचनाएँ पदे-पदे मिलेंगी। रस-रसाग-निर्णय, शृगार-शिरोमणि, अलकार निर्णय आदि ग्रथो का कवित्व तो सब का सब रीति का मुखापेक्षी ही है। शृगार-शिरोमणि नायिका-भेद का ग्रथ है - इसमें कवि, नायक और नायिका जो शृगार के आलबन है उन्ही के वर्णन से ग्रथ का आरभ करता है तथा शीघ्र ही नायिका वर्णन मे विस्तारपूर्वक प्रवृत्त हो जाता है। नायिका के शुद्ध अशुद्ध, स्वकीया परकीया, मुग्धा मध्या प्रौढा आदि जो भेद-प्रभेद है उन्ही के कथन और उदाहरण दे-दे कर ग्रथ की समाप्ति की गई है। प्रियतम परदेस से लौटता है तो सखियों, दासियों, दूतियो समेत नायिका उसका स्वागत करने मे लग जाती है। कोई उसे नहलाती है, कोई सुगधियाँ लगाती है, कोई शयन सज्जा मे लग जाती है आदि आदि। विश्वासघाती नायक के प्रति ढेरो उपालभ भरे छद है, उसके प्रति खीझ और क्षोभपूर्ण वचन है - 'पागे जितै मति जागे जितै निशि जाहु तितै अनुरागे जितै हरि।' सपत्नीक चिन्हो से चिह्नित नायक को देख उनके कितने ही क्षोभपूर्ण उद्गारों और व्यवहारो का चित्रण किया गया है -

(क) आए अरसीले कहूँ रमि कै रसीले लखि
स्वेद सरसीले रही रोस मैं सुमुखि सानि।
कहत ब्रजेश खुलि खोलती न भेद खेद
बाल अलबेली नहिं बोलती मधुर बानि।
हा हा करि कैसहू हदै सों परिरंभ्यो पीय
प्रेम के सहित चाह्यौ नीबी परसन पानि।
शंक बिन प्रीतम के अंक तैं उतरि पर
यंक तैं उतरि बैठी बंक भृकुटीन तानि ।।
(शृंगार-शिरोमणि)

(ख) अंग अरसात आए प्रीतम प्रभात ऐन
बूझि कुशलात बैन बोरि रस भाखी तू।
कहत ब्रजेश प्रतिदिन तैं अधिक प्रेम
नेम तजि क्षेम छन छन अभिलाषी तू।
अधर पियूष प्रानपति के करत पान
मान मन आनि मनभावती न माखी तू।
जान्यौ नँद नंद सब तेरो छल छंद प्यारी
केते फंद डारि नीबी-बंद बाँधि राखी तू ।।
(शृंगार-शिरोमणि)

नायक नायिका के सबधो को लेकर मान के विविध रूपो या प्रकारो का वर्णन किया गया है लघु गुरू मध्यम आदि

(क) जान्यो न कोऊ भयो कब मान मनायो कोऊ कब राधिका मान्यो।
(ख) प्रीतम को कर जोरत हेरि निहोरत हेरि निहारत ही बन्यो।
(ग) प्रीतमै पॉय पलोटत हेरि प्रिया हँसि प्रेम सों कंठ लगायो।

(शृंगार-शिरोमणि)

एक मान ऐसा है जो प्रिय को देखने पर छूट जाता है, दूसरा उसके विनय पर तीसरा उसके आत्म समर्पण और परम दैन्य पर। सखियॉ उसके मान को छुड़ा सकने मे समर्थ नहीं होती। जहॉ रीतिशास्त्र कथिता ऐसी ऐसी मानवतियो का वर्णन हुआ है जिनका मान छूटने का नाम नहीं लेता - 'शीश नाय नाय हारी, विरह सुनाय हारी, सखियॉ मनाय हारीं, कैसेहू न मानती'-वहीं ऐसी उत्तमाओं और पतिव्रताओ का भी वर्णन हुआ है जो प्रियतम को सौ-सौ दोषो से दूषित देख कर भी शिरोधार्य करती है -

(क) भाग हमारो उदै भयो आजु भयो अनुराग सों जो इत आवन।
अंक मैं लागि अनंद मैं पागि रहौ परयंक मैं सोय सुहावन।
रावरे की रुचि हेतु ब्रजेश मनावती हौं विधि सों परि पावन।
प्रेम समेत चहै उत ही रहौ क्षेम समेत रहौ मनभावन।।

(शृंगार-शिरोमणि)

(ख) आए प्रभात समै अरसात प्रिया उठि आदर सों गहि हाथ को।
केलि के गेह मैं लाय सनेह मैं लीन्ही लगाय हिये निज नाथ को।
राति ब्रजेश रहे सॅग सौति के जानि न जाय कोऊ यहि गाथ को।
ओठ को अंजन पान कपोल को प्रेम सों पोंछ्यौ महावर नाथ को।।

(शृंगार-शिरोमणि)

वे इतनी भोली हैं कि छली और अविश्वसनीय प्रिय की भी साज म्भार, सेवा और इच्छापूर्ति पूरी निष्ठा के साथ करती हैं - उसे स्नान कराती है, उसका चरणोदक लेती हैं, शयन कक्ष सॅवारती है, व्यजन झलती है और उसके आदेशानुसार पॉय पलोटती है। दो पत्नियों वाले पति को एक की ऑंख मूॅदते और दूसरी को चूमते दिखा कर दोनो के प्रति प्रेम का निर्वाह करते दिखाया गया है। वनमाली की रूप छटा से, चितवन से, वनमाल पर, अंग-अग के आकर्षण से मुग्ध कितनी ही परकीयाओं का भी चित्रण हुआ है। कितनी नायिकाएँ ऐसी हैं जो अपनी 'सुरति क्रीडाओ' को छिपाती फिरती है। इन्हे रीति की शब्दावली में 'सुरति संगोपना' कहा गया है तथा भूत भविष्य और वर्तमान

की 'सुरति' का सगोपन करने वाली बताकर इनके ये ही तीन भेद किए गए हैं। भूत और भविष्य की सुरति-सगोपनाओ के चित्र इस प्रकार खींचे गए है -

(क) बदन बिथोरि डारे बेनी गुन छोरि डारे
तोरि डारे हीरन के हार उर तोर तैं।
फारि डारे बसन विभूषन विदारि डारे
झारि डारे केशरि कपोल श्रम नीर तैं।
कहत ब्रजेश प्रभा मिगरी बिगारि डारे
गारि डारे गात कत होति है अधीर तैं।
भागनि बची हौं भागि भृंगन की भीर तैं
विहंगन की भीर तैं कुरंगन की भीर तैं॥
(श्रृंगार-शिरोमणि)

(ख) अनुशासन मानि अनंद सो जाहुँगी छोटी ननंद हौं रावरी मैं।
चरचा सुनी पै उतपात की एक करै उतपात विभावरी मैं।
छत देत ब्रजेश उरोजन मैं घट लेत बनै न उतावरी मैं।
भई बावरी सी अबहीं मैं अली वली वानर है वहि वावरी मैं॥
(श्रृंगार-शिरोमणि)

ये म्वेच्छा से जा जाकर प्रिय के सग विविध प्रणय केलियों का आनद लेने वाली नायिकाएँ हैं जो मभाव्य असभाव्य किसी भी प्रकार के बहाने बनाकर या झूठ बोलकर अपने उन्मादपूर्ण कृत्यों पर परदा डालती हैं। वैसे उनकी वचनावली और शारीरिक स्थिति के चित्रण साफ बताए देते है कि उनका इतिहास क्या है। कुछ नायिकाएँ 'स्वयदूतिका' बन कर प्रिय को एकात में जाकर विश्राम करने की सलाह देती हैं -

प्यासे तुम पथिक मवासे को न योग इतै
सासे पंथ प्रबल मयूष महताब के।
मोदमयी मंजुल निकुंज के निकट आगे
मिलिहैं मजेजदार मंदिर गुलाब के।
(श्रृंगार-शिरोमणि)

ये एकांत, शीतल, छायाप्रद, रमणीय स्थान क्यो बताए जा रहे है ? इसलिए कि वहीं वह भी उन्हे मिलेगी। इस प्रकार प्रणय व्यापारो में स्वय भी उत्साहपूर्ण जो गोपियाँ या प्रेमिकाएँ हैं कवि ने उनका वर्णन किया है। किसी तरुणी का प्रेम उसके अगों में स्पष्ट लक्षित दिखाया गया है, किसी को पडोसिन के घर के सूनेपन में विशेष

रस आ रहा है कि स्त्रियां सब न्योते मे गई है और रात्रि भी वर्षा की अंधकारमयी है तथा प्रसन्न नायिका का पति अभी परदेस मे ही है

(क) आनंद को उमग्यो उर अंबुधि मानहु इंदु मनोरथ पेखि कैं।
दूनो भयो सुख पूनो निशागत सूनो पडोसिन को घर देखि कै॥
(शृंगार-शिरोमणि)

(ख) मद मुख जोति छल छंद न छपैगो तेरो
छूटे बंद कंचुकी के गई छली काहू सों।
जगन लगी है सब यामिनि दृगन लाली
जानति हौं लगन लगी है लली काहू सों॥
(शृंगार-शिरोमणि)

ये रीतिग्रंथो की मुदिताएँ और लक्षिताएँ है। इसके बाद उन अनुशयनाओ की चर्चा हुई है जो विशिष्ट संकेत-स्थानो पर प्रिय मिलन का आयोजन करती है और किसी कारण से न मिल सकने पर दुख के अगाध सागर मे जा गिरती हैं। रस दृष्टि से शृंगार के अंतर्गत गणिकाओ का वर्णन रस व्याघातक ही होता है पर धन से ही वस्तुत प्रेम करने वाली गणिकाएँ भी वर्णित हुईं है जो जरी के वस्त्रो और जेवरो से सजी सँवरी हुई घृताची, तिलोत्तमा और मेनका के समान कामबाला बनी हुई चित्रशालाओ में शोभा देती हैं। उनका आचरण अलग ही तरह का होता है, वे प्रेमी का उपहार भी ले लेती है और उन्हे युक्तिपूर्वक टाल भी देती है, कभी वे रसिको से अनंत धन रखवा लेती है ओर कभी वे मणिमुक्ताओं वाले धनियो की भी उपेक्षा कर देती है। सच्चे प्रेमियो का वे धन के बिना स्वागत नही करती किंतु उनकी वाक्‌चातुरी देखने योग्य है। इन वर्णनो मे कवि का कौशल सराहनीय हो उठा है -

(क) मो पर जो अनुराग तिहारो ब्रजेश तौ भाग बडो मम भालन।
पै गुरु लोगन के बिन योग सँयोग न ह्वै सकै कौनि हू चालन।
माल दिखाय कै मोतिन की यह मातु के शासन को करि पालन।
प्रेम सों कालिह मिलौंगी तुम्हैं बलि क्षेम सों आजु क्षमा करौं लालन॥
(शृंगार-शिरोमणि)

(ख) सौरभ मैं लोलन स्वरूप मैं श्रमित करि
सोभा सरसाय दृग जोरि लेति काहू सों॥
कहत ब्रजेश मैनबाला मैनका सी बनि
मान कै मरोर मुख मोरि लेति काहू सों॥

छैलन दिखाय छटा छल बल ठानि घन
छन मैं अनंत धन छोरि लेत काहू सों ।।
केलि समै सत लेति काहू सों सहस्त्र लेति
लाख लेति काहू सों करोरि लेति काहू सों ।।
(शृंगार-शिरोमणि)

(ग) दै धन धाम बनायो धनी जो अनेक धनीन को धीर धरावत ।
हौं धनि हौं धनि सोई धनी की धनी वह मेरो गरे जो लगावत ।
मैं सधनी सधनी सब भाँति ब्रजेश इतै मधनी को कहावत ।
लावत केते धनी मुकता मनी और धनी धर्न्गी मोहिं न भावत ।।
(शृंगार-शिरोमणि)

नायक नायिकाओ की एक दूसरे मे प्रशसा कर करके उनका मिलन कराने वाली उत्तम, मध्यम आदि दूतियों का वर्णन किया गया है जो नायक से इस प्रकार से कहती है - 'हौ तौ लखि आई आजु सॉझ को दिखौहो तेहि, राम की दुहाई माई मोहन सी मोहनै ।' सघटन कराने वाली दूतियो के वर्णन के अनंतर रूपगर्विता, प्रेमगर्विता, गुण गर्विता, अन्य सुरति दु खिता, प्रवत्स्यतपतिका, प्रोषितपतिका, आगमिष्यत्पतिका आदि क वर्णन है जो स्वकीया, परकीया, गणिका, मुग्धा, मध्या और प्रौढा के क्रम से बहुत स भेद प्रभेदो मे बँट जाते है । इनमें स अनेक वर्णन बहुत ही सरस है । कोई अपने रूप के ही गर्व से मरी जा रही है, किसी को अपने कटाक्षों पर ही जाने कितना घमड है, कोई अपनी रूप छटा पर कृष्ण को वेतरह मुग्ध देख मन ही मन अपने को समझे बैठी है, कोई इसी आनद मे फूली नही समाती कि कृष्ण उसी का नाम मुरली मे क्यो बजाते फिरते है और कोई ऐसी है जो गृह मर्यादाओ तथा स्वभावगत लज्जा आदि के कारण अपने मनोभावो को व्यक्त नही कर पाती । उसकी मर्यादाओ के भीतर से ही उसके प्रेम की लहर झलक मारती मिलती है -

भानु को भास ब्रजेश बिलोकत सासु के सामुहे बोलि न जात है ।
व्यंग भरी सुनि बानि ननंद की काको अरी उर छोलि न जात है ।
ऑगन मैं गुरु लोगन के डर केलि के भौन तैं डोलि न जात है ।
का कहिए ब्रजराज के काज को लाज सों घूँघट खोलि न जात है ।।
(शृंगार-शिरोमणि)

कोई अपने हॅसकर देखने पर कृष्ण को विमोहित हुआ देख अपने को 'टुनहारी' मानने लगती है, सखियों की टोल मे भी उसे टोना करने वाली कहकर पुकारा जाता

है वह अपनी इस सामर्थ्य पर कम प्रसन्न नहीं है से आत्म श्लाघा करती हुई कहती है - हे सखी क्या बताऊँ मेरी ऑखों का ही कसूर है कि कुछ ऐसा ही होनहार था जो ऐसा हो गया-

लखि मोहिं विमोहित से ह्वै गए खरिका मैं खरी खुनिहारी भई।
सहजै हँसि हेरिबे तैं सजनी यहि टोल में मैं दुनहारी भई ।।

कोई प्रेम दीप की ज्योति जगाना चाहती है और श्रीराग सुना कर प्रियतम के मन को भा जाना चाहती है ? कोई प्रिय की अपने प्रति असाधारण आसक्ति के मोद से ही भर उठती है। इस प्रकार ब्रजेश जी के प्रेम के रीतिबद्ध वर्णनो में और भी बहुतेरे सुन्दर भाव आए हैं। प्रीति की डगर पर जो नए सिरे से पॉव देती है वह चार दिन मे ही बहुत आगे बढ जाती है। अनुकूल वातावरण और साथ सग का कुछ ऐसा ही प्रभाव पडा करता है -

पट घूँघट को करि ओट कबौं पिय के दृग सों दृग जोरै लगी।
बतरानि सों औ मुसकानि सों मंजु ब्रजेश विनोद विथोरै लगी।
दिन चारि ही तैं वह चंदमुखी कछु केलिकथानि की ओरै लगी।
गति मैं मति मैं कुल कीरति मैं रति मैं पति को चित चोरै लगी ।।
(रस-रसांग-निर्णय)

ये प्रणयी युगल शीघ्र ही बोधक हाव भावो द्वारा अपनी अपनी कथा एक दूसरे को सुना डालते हैं -

कौतुक कान्ह कियो धौं कहा परस्यो निज हाथन सों निज ही को।
त्यों मनभावती हू दृग द्वै समुझायो कछू मनभावते पी को।
फूल जपा को दिखायो ब्रजेश महाछविमूल जुड़ावन जी को।
बाल विचारि गोपाल की बात दुरायो लिलार तैं लाल को टीको।।
(रस-रसांग-निर्णय)

रीति की परपरा से अभिज्ञ काव्य रसिको को यह जानते देर न लगनी चाहिए कि नायक ने अपने हृदय पर हाथ रखकर मिलन की इच्छा व्यक्त की और नायिका ने नेत्रो के निमीलन द्वारा रात्रिकाल का समय निश्चित किया। जपा के पुष्प द्वारा नायक ने अर्धरात्रि का समय ठीक किया और इस नायिका ने भी 'लाल का टीका' छिपा कर अपनी स्वीकृति दे दी। जब मिलन या अभिसार का समय आता है तो हड़बडी मे नायिका कहीं का आभूषण कहीं पर पहन लेती है और साथ लगी सखियॉ ऐसे अवसरो पर वाक् प्रहार से कैसे चूक सकती हैं - 'चली कौन पै कुडल को करि कंकन बॉधि

कनी पाथन मै

सभी वय की, सभी मनोभावो की, सभी प्रवृत्तियो की शास्त्र-सम्मत नायिकाए ारा वर्णित हुई है । ऐसी जिन्हे यौवन के अकुरित होने का भी पता नहीं और ान्हे यौवनागम का पता हो जाने पर क्षण-क्षण बेचैनी होती रहती है -

सारस नैनी सखीन बचाय कवौं कर सारस लै चित चोरति ।
आरसी सारसी इन्दु ब्रजेश गयंदन मैं कबहूँ मति दोरति ।
बंद मैं कंचुकी के नवला नित बंद नए नए नेह सो जोरति ।
घेर करैं घर की तऊ घूमि घरी घरी घाँघरी बाँधति छोरति ।।

(शृंगार-शिरोमणि)

ब्रजेश ने एसी नायिकाओं का वर्णन किया है जो बिलकुल नवोढाएँ है तथा ' देख कर लाज के मारे गड जाती है और केलि-भवन छोड सास-सदन मे शरण - 'केलि को सदन त्यागि सोभा को सदन श्यामा सासु के सदन बैठी बदन दुराय ऐसी स्वकीयाओ का भी वर्णन हुआ है जो देश की आदर्श और महान पुण्यात्मा के ही चारित्रिक आदर्शो मे पलना पसद करती हैं -

मोद उर पूरैं दमयंती के बिसूरै गुन
रुक्मिनी की महिमा हिये मैं चुनिबो करै ।
गीता सैं अधिक मानि परम पुनीता प्रिया
पारवती सीता के चरित्र सुनिबो करै ।।

(शृंगार-शिरोमणि)

गुप्त मिलन के लिए तैयारी कर के जाने वाली समस्त शृगार से प्रसाधिता ारिका का यह चित्र पर्याप्त आकर्षक है -

अबीर की वंदन तीर मैं विंदु सुचीर मैं पीत प्रभा सुखदानि ।
ब्रजेश विंकुचित केशन मैं कचनार और किंशुक की कलिकानि ।
विभातहि आजु नई छवि साजि गई पिय सों मिलिबे पिकबानि ।
गरे करि कंज की माल विशाल रसाल की मंजुल मंजरी पानि ।।

(शृंगार-शिरोमणि)

तथा ऐसी प्रेमिका की मनोदशा का चित्र भी दर्शनीय है जिसकी दूती ही उसके वेश्वासघात करती है -

कौन भाँति बेसरि की बनक बिगारि आई
केशरि कपोलन की कैसे झारि आई तू ।

कहत ब्रजेश जौन काम को पठाई तान
काम मजि काम को गरब गारि आई तू ।
स्वेदकन सूखे रूखे मुख सो प्रमानियत
जानियत जापै तन मन वारि आई तू ।
लाल सों न लाई गुनवारी माल मोतिन की
माल बिना गुन की गरे मैं धारि आई तू ॥

इस प्रकार इस उत्कृष्ट कवि ने आधुनिक काल में भी मुख्यत प्राचीन प्रवृत्तियो की काव्य धारा का ही पोषण किया और पर्याप्त परिणाम में लिखित रचनाओ द्वारा परम्परागत काव्य भाषा को समृद्ध किया है। ब्रजेश जी के रस और नायिका भेद ग्रथों में सरस छदो का अभाव नही । रीति का बधन सर्वथा गर्हित भी कैसे कहा जा सकता है। हिन्दी की काव्य चेतना लगभग तीन सौ वर्षो तक इसी प्रकार की थी। ये कवि भी अपने युग की उपज थे, अपने युग के प्रति वफादार थे। उस युग और परिस्थिति में जो उनसे हुआ वह उन्होने किया। लोक-मंगल विशेष न हुआ हो पर लोक-रजन तो किया ही। किसी सीमा तक लोक-मगल का भी विधान उन्होने किया। ऐसे ही साहित्यकारों के वशज थे श्री ब्रजेश जी जो आधुनिक युग मे परम्परागत राग छेडते रहे। रीति की विशिष्ट परम्परा पर चलते हुए काव्य की उन्होंने साधना की और उस परम्परा विशेष को पोषित करते हुए एक सीमा तक उसे समृद्ध किया। अपनी कल्पना, भावना, कला कुशलता, सौंदर्य चेतना आदि का जो भी स्वरूप उनके सस्कारी मन ने पाया था उसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति की और सबसे बडी बात तो यह है कि वे काव्यप्रेम की प्रतिमा थे। उनकी सृष्टि उनके असाधारण काव्यप्रेम की परिणति है और उनकी महत्ता का हमारी दृष्टि मे यही सबसे बडा कारण है। प्राचीन रागो को गाते रहने के कारण लोग भले ही उन्हे आधुनिक साहित्य मे महत्व न दे परन्तु प्राचीनता मे यदि किसी को तनिक भी मोह होगा तो वह ब्रजेश जी को उनके काव्य के कारण अवश्य सराहेगा इसमे सदेह नही। बहुत ही अनगढ और स्फूर्तिहीन रचनाओ का अबार लगा देने वाले नए सर्जको से ब्रजेश जी का कृतित्व कहीं ऊँचा है, कहीं महत् है। उसमे चित्त को रजित करने की, सौदर्य के पूर्वपरिचित लोक की ही तो सही फिर से सैर कराने के लिए, भावो की शत शत अभिनव मूर्तियों और छवियो का सौदर्य प्रस्तुत करने के कारण ब्रजभाषा काव्य की गौरवपूर्ण परम्परा मे उनका विशिष्ट स्थान स्वीकार करना ही पडेगा। न केवल ब्रजभाषा काव्य की आधुनिक परम्परा में वरन उसके समूचे इतिहास क्रम मे भी ब्रजेश जी अपने गौरवपूर्ण कृतित्व के कारण एक आदरपूर्ण स्थान के अधिकारी है। ब्रजेश जी की रचनाओं का यथेष्ट रूप से प्रकाश न हो सकने के कारण वे अपने युग में भी विशेष प्रसिद्धि न पा सके पर साहित्यिक शोध के इस युग मे ब्रजेश जी के इस कृतित्व पर किसी न किसी अनुसधाता

की दृष्टि अवश्य जाएगी और वह उनके कृतित्व का मूल्याकन समग्र रूप मे कर सकेगा इसका मुझे पूरा विश्वास है।

संभोग वर्णन

शृंगार का वर्णन करते हुए सभोग के भी कुछ चित्र कवि ने अकित किए हैं। रीति परपरा के प्राय: सभी कवियो ने सभोग का कुछ न कुछ वर्णन अवश्य किया है। कही पर सभोग की तैयारी करती हुई नायिका का वर्णन हुआ है जो जरी की कढाई के वस्त्रों मे सज धज कर मणिजटित आभूषणो से सँवार कर शुक सारिकाओं को रंग महल से दूर करती है तथा चित्रशाला को सुगधियो से आपूर किए दे रही है, व्यजन की, जल की पूरी व्यवस्था किए दे रही है, मन को सयोगाकाक्षी बनाकर वह पुष्पों की सेज सजाती है। कही सखी समागम सबधी शिक्षा देती है कि आज तेरे प्रिय परदेस से लौट रहे है तू भली प्रकार समागम द्वारा उनका श्रमहरण कर -

आज विदेश तैं आगम पीय को तीय समागम कै श्रम हारियो।
सेज सजाय ब्रजेश सखीन तैं खीन तैं खीन जरी पट धारियो।
पान खवाय कछू बतराय हरे हरे घूँघट को पट टारियो।
बाँधौ न जो समुझाय हू किंकिनी नूपुर तौ पग ते न उतारियो।।

(शृंगार-शिरोमणि)

ब्रजेश जी ने स्वयं इस छद में यह टिप्पणी दी है कि नूपुर साधारण रति में और किंकिनी विपरीत रति मे बाँधी जाती है। रीतिशास्त्र, कामशास्त्र और नायिका भेद संबधी अनेक गूढ सकेत कवि ने किए है। उक्त छंद में भी सखी द्वारा प्रदत्त अनेक शिक्षाएं विविध अभिप्रायो से पूर्ण हैं। कही ब्रजचंद की गोद मे राधिका की छवि का उदय दिखा कर सदेह अलकार के माध्यम मे उस छवि का सौदर्यातिशय्य द्योतित किया है और कहीं नायक नायिका को रतिक्रीड़ा मे सोल्लास निमग्न दिखाया गया है -

काम कला के कुतूहल मैं भुज मेलि करैं दोऊ केलि निते निते।
रूप के रासि ब्रजेस दोऊ बिहरैं रस-रास मैं राति बिते बिते।
दोऊ बसैं उर दोहुन के हुलसैं बिलसैं हँसैं दोऊ हिते हिते।
दोऊ दुहून के चाह भरे मुख चूमत चारुता चारु चितै चितै।।

(रस-रसांग-निर्णय)

किसी छंद में सेज पर जाने से पूर्व भीत और शंकित चित्त की प्रिया का वर्णन है जिसे सखी के समझाने पर हौसला होता है किंतु गतव्य तक पहुँच जाने पर वहाँ से

त हान मे जिस दु ख का उदासी का अनुभव होता है अरुणोदय के कारण ज्ञा का भी बेहिसाब आक्रमण होता है तथा लाज की सकाच की मूर्ति सी वह जाती है यह भी एक बहुत सरस चित्र है

सेज में जाति सकाति प्रिया समुझाय सखी के कछू रुचि बाढ़ी ।
पाय कै नाह निशा भरि आजु निशा भरि केलि करी अति गाढ़ी ।
आँगन मैं लखि भानु को भास उदास भई मुख घूँघट काढ़ी ।
मौन ह्वै नैन ते नीर विमोचित केलि के भौन मैं सोचति ठाढ़ी ।।

(रस-रसांग-नि०

कभी कभी संभोग-वर्णना को कवि ने कठिन भाषा के आवरण मे ढाँक ार कभी आलकारिक शैली में उसे छिपा दिया है -

श्री ब्रजचंद की गोद मैं मोद सों राधिका की छबि आज उदोति है ।
विधु मैं माल है मोतिन की किधौं सिंधु मैं तारावली सुख सोति है ।
नीलम खंभ मैं हेम प्रभा किधौं काजर पुंज मैं दीपक जोति है ।
इंदु कला तम के बन मैं घन मैं किंधौ दामिनि की दुति होति है ।।

(शृंगार-शिरोमणि

संकलित अंक परयंक पै शशांक रस्मि
अंक भरि पी को भई श्रमित प्रभा अनिंदु ।
दर्शि प्रतिबिंबिन ब्रजेश प्रति बिंब पोंछै
विंबाधर कंज दृग विमल कपोल इंदु ।
मंडित कुचाग्र कांति झरत प्रसेद कन
लागि लट बंक लोल लुरित मुखारविंदु ।
कंदरप दारक पै मानहु प्रदर्प भरी
चंद ते लै च्वावति प्रदर्पिनी पियूष बिंदु ।।

(शृंगार-शिरोमणि

ोदरी शशोदरी कृशोदरी दरी मैं बैठी
लूटी मुक्ति मोद री अनुक्त रति कोटी मैं ।
झारै स्वेद मंडित ब्रजेश टारै कुंतलनि
डारै भग्न भूषन प्रभग्न पर ओटी मैं ।
पन्ना सौं जटित बेंदा पटित ललाट दुति
छटित कुचाग्र पै गिरो है गति छोटी मैं ।

वे ब्रजेश

चद को अमद सुत चद तै मचलि मानो
मद मंद आयो चलि मेरु मणि चोटी मै ।।
(शृगार-शिरोमणि)

शरद पूर्णिमा मे शरद पूर्णिमा-सी कामिनी केलि सुख प्राप्त कर प्रस्वेद बिदुओ से भग कर लेटी होती है। कत भी उसके समीप होता है। उनकी उस स्थिति और मुद्रा की अश्लीलता पर भी कवि ने उत्प्रेक्षा का आवरण चढा दिया है -

रत्नहार मडि पीन उन्नत पयोधर मै
पानि धरि सोयो कत कामिनी के रुख मै ।
पचसर मानो पचसर मै अन्हात पायौ
पचसर साथ ही चलायौ पचमुख मै ।।
(शृगार-शिरोमणि)

सभोग-वर्णना के साथ साथ सुरतात स्थितियो का भी वर्णन हुआ है तथा कभी कभी केवल उत्तर सभोग स्थिति का वर्णन कर संभोग प्रसग को व्यजना भी की गई है। ऊपर के अवतरणो के अतिम दो छदो मे भी सुखात स्थिति का संकेत है। विपरीत रति के अनंतर काम मोहित प्रेमी युगल उस समय श्रम शिथिल हो सो जाते हैं जब एक प्रहर रात बाकी रह जाती है उस समय उनके मुख की विवर्णता और तेजहीनता का वर्णन ऐसी शब्दावली में और इस प्रकार की वर्णन शैली मे किया गया है-

(क) पोखराज पदिक सुवर्ण की रही न प्रभा
पन्ना को बरन भयो प्यारी के बदन मै ।
(रस-रसांग-निर्णय)

(ख) याम निशि बाकी श्याम अंग सो लपटि श्यामा
सरम समोई सोई सुमन सजाटी मैं ।
नीलम कपाटी मैं पदिक लर आला कैधौं
पोखराज माला मजु मरकत पाटी मै ।।
(रस-रसाग-निर्णय)

इस प्रकार कवि ने संभोग वर्णन में अश्लीलता को भरसक बचाने की चेष्टा की है फिर भी सभोग वर्णना का जो भी स्वरूप है चाहे वह साकेतिक हो अथवा स्पष्ट वर्णित उसका कारण भी परपरा पालन ही है। रस रीति और नायिका भेद लिखते हुए ऐसे प्रसंगों को बचाया नहीं जा सकता था। ब्रजेश जी ने अपनी परंपरा का पालन करते हुए भी सभोग वर्णना को अमर्यादित नहीं होने दिया है। यह एक श्लाघनीय तथ्य

है उनकी सभोग वर्णना का

प्रौढा नायिकाओ के सभोग वर्णन मे इस तथ्य पर विशेष प्रकाश डाला गया है कि सभोग से अतृप्ति उन्हे होती ही नहीं। वे वियोग उपस्थित करने वाले हर कारण का पूरी शक्ति से प्रतिरोध करती हैं और संभोग की घड़ी को अधिक से अधिक बढ़ा देने की उतावली दिखाती है। एक छद मे बताया गया है कि प्रौढा नायिका सायकाल से ही रतिरंग मे निमग्न हो जाती है तथा 'अर्ध यामिनी लौ करि मतत अनंत सुख' मे तल्लीन रहती है। प्रिय जब आसन्न प्रवास या वियोग की चर्चा करता है तब रात्रि में ठहर जाने के लिए उसे वह सारे उद्योग करते दिखाया गया है जिसमे चन्द्रमा डर कर ठिठक जाए और रात्रि समाप्त न हो तथा उसका सयोग सुख चिरकाल तक बना रहे। उसके ये उद्योग भले ही निरर्थक क्यों न हो और उपहासास्पद भी क्यो न लगे किंतु हैं वे परपरा मे पोषित ही। सूर और जायसी जैसी ऊहाएँ कर गए हैं वैसी ही एक ऊहा ब्रजेश की भी इसी संदर्भ मे देखिए -

बाढ्यौ शोच छन मैं ब्रजेश ताके मोचन की
लागी विधि शोचन बखानति हौं जाहे तैं।
बेश लिख्यौ राहु को हिमालय को देश लिख्यौ
शेष लिख्यौ सुंदरी महेश लिख्यौ काहे तैं॥

(शृंगार-शिरोमणि)

ऋतुएँ संभोग सुखों को और भी प्रगाढ कर देती हैं विशेष कर वर्षा-मेघों का घिरना, मयूरो का उन्मुक्त होना, चातक दादुरो का बोलना तथा अधेरी वर्षा भरी राते काम वृत्ति को और उत्तेजित कर देती है। इसी प्राकृतिक स्थिति को दृष्टि मे रखकर कवि को लिखना पड़ा है कि-

पावस मैं मिलि कामिनि कंत ब्रजेश त्रियामिनि जाग रहे हैं।
आनंद सों अनुराग भरे दोउ भाग भरे गरे लागि रहे हैं॥

(शृंगार-शिरोमणि)

कभी सभोग की अतिशयता की व्यंजना भी कवि ने सुरतान्त दशा कथन या सखी द्वारा नायक के प्रति तत्सबधी उपालंभ द्वारा कराई गई है। सखी नायक की धृष्टता के आधिक्य तथा उसके सभोग विषयक व्यवहार की अति निर्दयता पर नायक को मीठी फटकार सुना रही है -

कौल कली तौ लली अब हीं यह रीति भली नहीं जो उर दाहिये।
जानी नहीं बरजोरी ब्रजेश करी बरजोरी अजौं मुख आहियै।

बेसुधि बाल नवेली परी तलबेली तिहारी कहाँ लौं सराहिए।
कालिह करी निरदै मति जैसी तुम्हैं निरदै मति ऐसी न चाहिए ॥
(शृंगार शिरोमणि)

इस प्रकार ब्रजेश जी ने स्पष्ट रूप मे रस और नायिका-भेद निरूपण करते हुए शृगार के किंचित उत्तान प्रसंगों का वर्णन किया है जो परिमाण मे भी अधिक नही है तथा अमर्यादित भी अधिक नहीं है। उनमें परंपरा का ही निर्वाह प्रधान है।

ऋतु-वर्णन

ब्रजेश जी ने रस-रमाग-निर्णय नामक ग्रथ मे रस-निरूपण करने हुए विभावो के अंतर्गत ऋतुओ का वर्णन किया है। शृगार शिरोमणि में भी इस विषय के कुछ छद मिल जाते हैं। इन छंदों में ऋतुओ का वर्णन निम्नलिखित रूप मे हुआ है -

(१) पृष्ठभूमि के रूप में

ऋतु वर्णन में प्रकृति की चर्चा स्वाभाविक है। ऋतु और प्रकृति मिल कर सुख संभोग का परमोत्कृष्ट वातावरण निर्मित करते है। सखी नायिका से कहती है कि श्याम से सभोग सुख प्राप्त करने के लिए तेरी ससुराल में जैसा सुपास है वैसा अन्यत्र नहीं क्योंकि एक तो वासंती ऋतु है दूसरे यहाँ पर सघन वाटिका है, लतावृक्षों के वितान तो इतने सघन है कि वहाँ सूर्य का प्रकाश भी नही पहुँच पाता। ऐसा सुदर वातावरण, ऐसी उपयोगी और संभोग्य प्राकृतिक पृष्ठभूमि के होते हुए तुझे ससुराल छोडकर कहीं और जाने की क्या आवश्यकता थी। चन्द्रमा का प्रकाश, कुमुदिनी का खिलना, गंधवाह का सुगंधियो सहित बहना, चकोरो का चहकना, मल्लिकाओ का महकना, मधुकरों का गुंजन, चैत्र का मास और ज्योत्स्ना का धवल प्रकाश - इससे अधिक मोहक और मादक वातावरण सभव नहीं। ऐसी ऋतु मे मान और रोष के लिए गुंजाइश नही। यह तो प्रणय केलि तथा सभोग व्यपारो के लिए श्रेष्ठतम परिस्थिति है। शरद का यह नैसर्गिक सौंदर्य मनोभव के पोषण के लिए ही है। ऐसे आशयो को व्यक्त करने वाले छद निश्चय ही संभोग की उपयुक्त पृष्ठभूमि के रूप मे ऋतु और प्रकृति को प्रस्तुत करने वाले हैं।

ब्रजेश जी ने ऋतुवर्णन के प्रसंग में ही कुछ ऐसे छद भी लिखे है जिनमें विविध ऋतुओ के अनुकूल सुख सुविधाओं अथवा सभोगोपयोगी उपकरणों की आकाक्षा व्यक्त की गई है। ऐसे छंदों में ऋतु के अनुकूल उपकरणों की चर्चा प्रधान हो गई है। जब ग्रीष्म ऋतु आती है तब कवि या प्रेमी इस प्रकार के सुखद उपकरणो की आकाक्षा करता है -

चंद होय चारो ओर चाँदनी अमंद होय
मंद होय मारुत चलत द्वार दर मैं।

गायक प्रवीन होय वाटिका नवीन होय
वीन होय बाजत विनोद की लहर मैं ।
सौरभित नीर होय अमल उसीर होय,
शीर होय समिधि ब्रजेश गीष्म भर मैं ।
पास गंगनाला होय अंग फूल माला होय,
बाला होय संग भंग प्याला होय कर मैं ।।
(रस-रसांग-निर्णय)

यहाँ पर कवि छोटा मोटा उमर खैयाम हो गया है । प्रकारान्तर से कवि ने कहना चाहा है कि ग्रीष्म ऋतु बहुत ही दु.खदायिनी होती है । इस ऋतु का मजा तो तब है जब ये उपकरण पास मे हों । ऋतु को सकेत द्वारा ताप का वर्णन और चित्त मे मौज बहार की जो तीव्र ललक विद्यमान है उसी को जाहिर किया गया है । इसी प्रकार शिशिर ऋतु के संदर्भ में कहा गया है कि इस ऋतु के विनाशक उपकरण या यो कहिए कि ऋतु के क्लेश को मिटाने वाले और उलटे सुख प्रदान करने वाले सरंजाम जिसने इकट्ठे कर रखे है उसे शिशिर का शीत व्याप्त नही होता - आग जल रही हो, कस्तूरी महक रही हो, अगरु धूम्र से प्रकोष्ठ धूपित और सुवासित हो, गरम गलीचे और नरम दुलाइयों की यदि ठीक से व्यवस्था हो तो शीत कष्ट नहीं दे पाता -

कहत ब्रजेश कहा शीत को कशाला तिन्हैं
शिशिर के पाला को दिवाला कीजियत हैं ।
बैठे चित्रशाला मैं दुशाला सों लपेटि अंग
बाला संग बारुनी के प्याला पीजियत हैं ।।
(रस-रसांग-निर्णय)

यहाँ पर भी वृत्ति संभोगकांक्षिणी ही है । यही बात प्रधान रूप से उभर कर आती है कि शिशिर का सदुपयोग सभोग-सामग्रियो से लैस होने में ही है । सभोग सामग्रियों के बीच भी कवि की दृष्टि वस्तुविशेष पर विशेष रूप से निबद्ध है । एक अन्य छद मे यह दृष्टि स्पष्ट हो उठी है जहाँ उन्होने कहा है कि शिशिर में शीत की अधिकता इतनी है कि किसी प्रकार भी नही मिटती । उसका एकमात्र निदान क्या है कवि के ही शब्दों मे देखिए -

थर थर काँपै गात आतप की केती बात
शीत को जवाल अग्निज्वाला सों न जात है ।

कहत ब्रजेश कहा तेल औ तमूल तूल
तून मखतूल ऊन आला सों न जात है।
पाला यह शिशिर को अजब कशाला रूप,
बाला बिन बारुनी के प्याला सों न जात है।
शाला सों न जात है रसाला सों न जात है
मसाला सों न जात है दुशाला सों न जात है ।।
(रस-रसांग-निर्णय)

इस प्रकार इन छन्दो मे ऋतु संभोग की पृष्ठभूमि के रूप मे तो नहीं वर्णित हुई है किंतु उसे संभोग के अनुरूप किस प्रकार बनाया जा सकता है इस बात का उत्साह के साथ वर्णन हुआ है। इन वर्णनों को हम उद्दीपन रूप मे किया गया ऋतु वर्णन भी मान सकते है क्योंकि आगत ऋतु कवि या प्रेमी के हृदय मे एक विशेष प्रकार के भावो को उद्दीप्त कर रहा है। ये भाव हैं हर्ष के, सुख के। कवि कहता है कि कैसी प्रखर ऋतुएं है ये ग्रीष्म और शिशिर। कहीं अनुकूल सामग्री मिल जाती तो हम इसी ऋतु को स्वर्ग में परिणत कर देते। संभोग की वासना को ये ऋतुएँ उत्तेजित करती है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि ये छद रीतियुगीन सरस कविता के धनी पद्माकर की देखा देखी लिखे गए हैं। उनका निम्नलिखित छंद बहुत प्रसिद्ध है तथा इसी की नकल पर अनेक कवियों ने ऐसे ही छद लिखे है जिनमे भावना और शैली दोनों का प्रभाव उतर आया है -

गुलगुली गिलमैं हैं गलीचा हैं गुनीजन हैं
चाँदनी हैं चिक हैं चिरागन की माला हैं।
कहैं पद्माकर त्यों गजक गिजा है सजी
सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं और प्याला हैं ।।
सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं
जिन्ह के अधीन एते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला हैं बिनोद के रसाला हैं
सुबाला हैं दुसाला हैं बिसाला चित्रसाला हैं ।।
(पद्माकर)

एक दो छंदों में कवि ने ऋतु के उल्लास का वर्णन किया है विशेष रूप से बसंत ऋतु में आने वाले फाग या होली के पर्व के अवसर पर। चंदन चर्चित होते है लोग, रोली लगाई जाती है, बरजोरियाँ होती हैं, मृदंग बजते है, ग्वाल ग्वालिनो को गुलाल लगाते है और इस तरह ब्रज की खोरियों में होली की धूम मचती है -

खेलत खुसी सो फाग सुदर सभाग श्याम
राग रस रूप रग रोरिन की धूम है ।
झोरिन की धूम झकझोरिन की धूम
सखि आज ब्रजखोरिन मैं होरिन की धूम है ॥
(रस-रसांग-निर्णय)

एक अन्य छद में बताया गया है कि आज श्यामा के महल में श्याम को रंग में डुबोया जा रहा है । इस आमोद पूर्ण क्रीडा का आयोजन कितना विशाल है तथा कितनी गतिविधियों से भरा है देखिए -

घोरे जात रंग भरि हौजन हिलोरे जात
जोरे जात अगर अबीर लै सहल मैं ।
कहत ब्रजेश जंत्र वृंदन मरोरे जात
वंदन विथोरे जात चंदन चहल मैं ।
झोरे जात झोरिन सों अंग झकझोरे जात
दासी दास दोरे जात फाग की टहल मैं ।
छोरे जात चोरे जात बसन निचोरे जात
श्याम आज बोरे जात श्यामा के महल मैं ॥

होली की भाग-दौड, चहल-पहल और धूम-धाम का यह चित्र कितना गत्यात्मक है ।

(रस-रसाग-निर्णय)

(२) आलंबन रूप में

आलंबन रूप मे ऋतु और प्रकृति का वर्णन एक ही छंद मे हुआ मिलता है । यह वर्णन ग्रीष्म ऋतु से सबंधित है तथा इसमें ऋतु की असाधारण उष्मा यथातथ्य रूप से वर्णित हुई है । ग्रीष्म का ब्रजेश जी द्वारा किया गया वर्णन सेनापति के ग्रीष्म वर्णन की याद दिला देता है । सेनापति का प्रभाव भी इस पर अंशत: है ऐसा कहा जा सकता है -

तापकर तेज तैं प्रतापकर आतप है
ताप तन तापित तृषा मैं मति पागि सी ।
सूखे जात नदी नद रूखे जात घन बन
दूखे जात अंग गई देह दुति दागि सी ।

कहत ब्रजेश लोक लोहित बिलोकियत
लोग महा व्याकुल चहुँघा लूक लागि सी ।
जेठ की जलाक जागि जगत की दौनि भई
औनि भई दहकि दवागि बड़वागि सी ।।
(रस-रसांग-निर्णय)

इस छंद मे ग्रीष्म ऋतु की तपन और प्रकृति की दशा मात्र के वर्णन तक कवि सीमित रह गया है। किसी प्रकार की भावना का आरोप नही है। ऋतु का वर्णन ऋतुगत प्राकृतिक स्थिति मात्र का निदर्शन कर रहा है। इसी पद्धति के वर्णन को आलंबन रूप मे किया गया ऋतु अथवा प्रकृति वर्णन कहा गया है।

(३) आलंकारिक शैली में

कुछ छद ऐसे भी मिलते है जिनमे ऋतु कर वर्णन अत्यत चमत्कार पद्धति पर किया गया है। इन छदो मे वसत, वर्षा, शरद, हेमत, आदि ऋतुएँ राधिका के मुख-मंडल मे ही देखी दिखाई गई हे। एक-एक छंद में एक-एक ऋतु की बहार श्यामा के मुख-मडल पर ही कवि को छाई हुई मिलती है और इसी रूप मे उसने इन ऋतुओ का चित्रण भी किया है। इस प्रकार के ऋतु वर्णन में कल्पना का उत्कर्ष ही मुख्यत. दृष्टव्य है साथ ही कवि की वृत्ति को राधिका या नायिका के प्रति तन्मयता भी प्रधान हो गई है। ऋतु के प्रसार के लिए जो व्यापक प्राकृतिक पृष्टभूमि है उसे छोडकर रमणी के मुख मे ही उसे छाया हुआ देखने का और क्या अभिप्राय हो सकता है। स्पष्ट ही है कि नायिकामयी मनोभूमि से ही ऐसे वर्णन प्रसूत हो सकते हैं। साथ ही साथ जैसा कह चुके है कला चातुरी या कल्पना की विलक्षणता द्वारा स्वय मुग्ध होना तथा दूसरों को भी चमत्कृत करना कवि का लक्ष्य हो सकता है। इसीलिए इन वर्णनो को हम चमत्कारपूर्ण ऋतु वर्णन या अलकारिक शैली पर हुए ऋतु वर्णन कह सकते हैं। उदाहरण के लिए जिस छद में नायिका के मुख-मंडल मे ऋतुराज की कल्पना की गई है उसे ही लिया जा सकता है। ऋतु सौंदर्य विषयक यह कल्पना रूपकातिशयोक्ति पर खड़ी है -

सौरभित शीतल समीर भीर भौंरन की
कंज कीर कोकिल समाज को सदन है।
कहत ब्रजेश अंब बिंब त्यों मधूक मंजु
कुसुमित कुंज नव साज को सदन है।
चंद चारु चंद्रिका वलित चहुँ ओर चितै
मंद दुति चंद भयो लाज को सदन है।

नद के नदन एहो मूरति मदन आज
राधे को वदन रितुराज को सदन है

अन्य ऋतुओ-वर्षा, शरद, हेमत आदि - का रूपक खडा करने मे उपमेयोपमाने का स्पष्ट कथन किया गया है। राधिका के वदन पर वर्षा ऋतु का दिग्दर्शन कराते हु कवि जुगनुओं को आभूषण, वकपंक्ति को दसनावलि, मयूर को बेसरि, विद्युत विलास को हास, इन्द्रधनु को भुकटि, घटाओं को श्यामल अलको में समाया हुआ देखत है। ऐसी ही कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध कल्पनाओ के सहारे राधिका के मुख मडल मे पावस शरद, हेमंत आदि के दर्शन कराए गए हैं। 'वामा के वदन में शरद की सामा' किस कल्पन विधान द्वारा उपस्थित की गई है देखिए -

मानस वियोग दुख भूले से वचन हंस
लोचन सरोज फूले सुषमा नदन मैं।
कहत ब्रजेश मंद हास कुसुमित कास
परम प्रकास कुंद कलिका रदन मैं।
आनन अमंद चंद चितओ चकोर बनि
चोरा चोरी चलि कै निकुंज के सदन मैं।
मदन गोपाल मन जामा में रहैगो नहीं
शरद की सामा लखि वामा के वदन मैं॥

(४) उद्दीपन रूप में

अब ऋतु वर्णन संबंधी उन छदों को देखिए जिनमें ऋतु प्रेमी चित्त के मनोभावों को विशेष रूप से उद्दीप्त करते दिखलाए गए है। यह उद्दीप्ति प्राय: दु:खमूलक ही है। विरह की अवस्था में ऋतुएँ विरहिणियों की विरह वेदना को, उनकी विरहाग्नि को और भी प्रज्ज्वलित ही कर देती हैं। वसंत ऋतु के दिन विरहिणी से बिताए नहीं बीतते, वियोगिनी का प्राणांत सा होने लगता है; फूले हुए कज, किंशुक, अनार, कचनार और गुंजार करती हुई भ्रमरावली अप्रिय प्रतीत होती है और शीतल समीर भी कम वेदनाप्रद नहीं। चन्द्रमा की चारुता बेचैन कर देती है और चाँदनी ऐसी जान पडती है जैसे चैन की चिता जल रही हो। इस प्रकार वियोग की स्थिति ऋतु के प्रभावो मे असाधारण विपरीतता ला देती है। एक छद में बताया गया है कि वियोग संताप का अनुभव करने के कारण एक ही ऋतु मथुरा में तो विकास और प्रसन्नता का कारण है किंतु ब्रज में दाह और अश्रुपात का -

शीतल मंद समीर उतै चलै तीर सी लूक इतै दुखवंत है।
रंग अबीर के नारे उतै बरषैं इतै नैन ते नीर अनंत है।
बोलत कोकिल कीर उतै पपिहा इतै रोज रटै कित कंत है।
ग्रीषम और बरषा ब्रज माहि ब्रजेश बसै मथुरा में बसंत है।।

इसीलिए एक छंद में विरहणी बहुत ही खीझ कर और झुँझला कर ऋतु जनित संताप को न सह सकने के कारण ऋतुराज को बुरी तरह कोसती है और उसका अशुभ मनाती है -

उपकंठ मैं बोलति कालिंदी के यहि क्वैलिया कंठ कुठार पड़ै।
बिकसे अरविंद मलिंदन पै इक बार ब्रजेश तुषार परै।
जरि जाय समीर अरी जेहि के पर पीर को नेकु न भार परै।
सुख मैं दुख देत सँयोगिन को मुख मैं ऋतुराज के छार परै।।

जिस ऋतु में प्रणयी चित्त आनंद भोग की आकांक्षा रखता है उसमें यदि विषाद और संताप ही हाथ लगे तो प्रेमी मन का इस प्रकार झुंझला उठना स्वाभाविक ही है। वसंत के बाद दूसरी मुख्य ऋतु है वर्षा जिसमे भावों की तीव्र उद्दीप्ति दिखाई गई है। वर्षा ऋतु के आने पर विरहिणी का हृदय काँप उठता है, वर्षा की काली अंधकारमयी रातें उससे असह्य हो उठती है, वह शाम होते ही कपाट दे कर सो जाती है - यदि सो नहीं जाती तो सोने का उपक्रम करती है - और किसी के जगाने से नहीं जागती और बहुत छेडी या जगाई जाने पर चीख उठती है - 'सावन की यह यामिनी राम हमैं यम कामिनी के सम लागती।' एक जगह विरहिनी वर्षा से पूछती है कि 'हे जगजीवन यदि जग में तुम जीवन हेतु हो तो यत्नपूर्वक जग को जीवनदान क्यो नहीं देते। देखो तुम्हारे कारण मेरी ही कैसी विषम दशा हो रही है। यदि शरो के समान तीखी बूँदे बरसानी हों तो और कही जाओ हमें क्यो इस कदर दग्ध कर रहे हो। तुम्हारा जल वर्षण तो दावाग्नि से भी दुगना दाहन है।' पावस के आने पर जल भरे मेघों का घुमड़ना, मयूरो का उन्मुक्त हो कर कूकना, तेज हवाओं का चलना, दरदहीन दामिनी का दमकना आदि सामान्य दृश्य है - इन तथा ऐसी ही अन्य ऋतु निरुपिणी दृश्यावली के चित्रण की अपेक्षा कवि की दृष्टि इस तथ्य के उद्घाटन पर अधिक निबद्ध रही है कि नवेलियो के चित्त में विरहाग्नि लहक उठी है - 'दमकन लागी वही दामिनी दरदहीन, लमकत लागी विरहागि नवेलिन मै।' स्पष्ट ही ऐसी ऋतुवर्णना मे ऋतुजनित भावोदीप्ति का वर्णन ही प्रमुख हो जाता है, ऋतु सौंदर्य का निरीक्षण-निदर्शन कम। अन्य ऋतुओ-शरद, हेमंत आदि के वर्णन में भी यही प्रवृत्ति लक्षित की जा सकती है। सुहावनी शरद ऋतु के प्राकृतिक उपकरण ऐसे जान पड़ते है जैसे शरद सामंत की क्रूर सेना खडी हुई हो और कंत के बिना हेमंत तो साक्षात हत्यारा

ही जान पड़ता है

(क) पल्लव पदाति धनु लतिका सुमन बान
काल की कृपान लै करैगो गति अंत की ।
करद कलीन सों बियोगिनी गरद ह्वै हैं
बे दरद सेना सजी शरद समंत की ।।

(ख) सेल्ल सम लागत फुलेल तेल अंगन मैं ।
शूल सो तमूल औ त्रिशूल तूल तंल यह ।।
शरद के अंत बचो केहू भाँति अंत अब ।
कंत बिन हंत होन चाहत हिमंत यह ।।

विरह वर्णन

'रस-रसाग-निर्णय' और 'शृंगार-शिरोमणि' मे रस और नायिका भेद विषयो की व्यवस्थित और विशद विवेचना हुई है और इन्हीं संदर्भो मे सयोग की ही भाँति विप्रलंभ शृंगार की मार्मिक रचनाएँ सामने आती है। यह वियोग वर्णन धारावाहिक रूप में न होकर विविध मुक्तकों मे स्वतंत्र रूप से कथित हुआ है फिर भी यह वियोग वर्णन पर्याप्त विशद है तथा विरहिणी की नाना भावदशाओ या मनस्थितियो का निरूपक बन पड़ा है। पूर्वराग या प्रणयारंभ की स्थिति मे अभिलाष हेतुक जिस वियोग की चर्चा शास्त्रग्रथो मे मिलती है उसके भी दो एक सरस उदाहरण सामने आते है। प्रेम है जो नायक नायिका में या कृष्ण और एक गोपिका विशेष मे जागृत हो चुका है। मिलन हो ही नहीं पाता, नायक अपने भाग्य पर भरोसा रखे हुए है और आशा के ततु के सहारे जी रहा है और नायिका को लोक बाधा बेतरह बेचैन किए हुए हैं तथा तरह तरह के संकल्प विकल्पों में उसका मन व्याकुल हो रहा है - यदि वह पत्र लिखकर भेजे तो पता नही क्या हो उन्हें पत्र मिले न मिले, फिर प्रिय की इच्छा और रुख का पता चलना चाहिए या पत्र यों ही लिख देना चाहिए। इस सबके ऊपर लोक का डर भी तो कुछ कम नहीं। न प्रिय के आगमन की कोई सूचना है और न उसका बुलावा ही फिर बेचारी करे तो क्या करे -

आइबे की चरचा न कहूँ न बुलाइबे की बतिया ही सुनाइये ।
तौ पुनि कैसे मिलैं हम आय उपाय कछू अब आपै बताइये ।।

उधर नायक में भी विकलता की कमी नहीं किंतु वह धैर्य धारण किए हुए है और अधिक आशावान है -

जो अनुराग हमारो ब्रजेश तौं भाग भलाई कबौं जगि जायगी ।
प्रेम भरी मम बातनि मैं कबहूँ वह प्रानप्रिया पगि जायगी ।
धीर धरे रहौ पीर बिसारि वियोग की भीर सबै भगि जायगी ।
फेरि हरे हरे कुंज मैं मंजु हरे हरे आनि गरे लगि जायगी ।।

सयोग से मिलन की घडी भी आती है परन्तु अभिलाषाओ की भीड और लज्जा की अधिकता के कारण संयोग होकर भी संयोग नही होने पाता तथा वियोग की व्यथा और भी घनीभूत हो उठती है -

भागन सों कहूँ देखि परे तो अभागिन लाजन ही मैं सनी रहीं ।
व्याकुल सी बिन देखे ब्रजेश हमेश वियोग विथा की धनी रहीं ।
स्वाति स्वरूप के आसरे मैं पपिहा सी पियास के ताप तनी रहीं ।
वै निरमोहिनी आँखिन सों मिलि ये अँखियाँ दुखिया ही बनी रहीं ।।

घनआनद मे इस प्रकार के कथन अनेक है ।

प्रणयी जीवन में अतत- वियोग हो कर ही रहता है । गोपियो के प्राणवल्लभ कृष्ण को भी कंस की आज्ञा से ब्रज छोडना पडता है । मथुरा जाने से पहले वे घर-घर जाते हैं और एक-एक गोप-गोपिका से मिलते हैं । वियोग की घडी आ गई है, जो थोड़े ही दिनो के लिए है परन्तु भविष्य का ठिकाना ही क्या । आसन्न वियोग की इस मार्मिक घडी मे गोपियों के पारस्परिक मनोभाव कैसे हो रहे है जरा इस छंद मे देखिए -

कंस निदेश तैं साथ अक्रूर के जात ब्रजेश अरी कसि फेंटि हैं ।
गेहन गेहन मैं सबही के सदेहन जाय सनेह समेटि हैं ।
बालपनै तैं रहे ब्रज माहिं मिला-मिली कै मन के दुख मेटि हैं ।
भेंटत हैं अबै मोहिं भटू अबहीं हरि तोहिं भुजा भरि भेंटि हैं ।।

अभी तो प्रिय का वास्तविक प्रवास हुआ नहीं है और आसन्न वियोग से त्रस्त प्रेमिका की साँसो की यह दशा है कितु वियोग जब घट जाता है तब तो सोचना बिसूरना ही उसका एकमात्र अवलब हो रहता है - रोते रहना, दुख सहना, रात-रात जाग कर प्रतीक्षा करना ही उसका काम रह जाता है । अवधि की आशा मे प्रिय आगमन की निराश कर देने वाली आशा के सहारे वह कब तक आँसुओं में नहाती रहे, विकलता क्षण भर के लिए भी उसका साथ नहीं छोडती, कामदेव शरीर को ध्वंस किए डालता है, उसका किसी के द्वारा निवारण नही हो पाता, कमल के शीतल कारी पत्तों के बिछावनो से भी कुछ होना-जाना नहीं, मात्र वनमाली की प्रतीक्षा ही उसका जीवन बना हुआ

ही जान पडत है

(क) पल्लव पदाति धनु लतिका सुमन बान
कास की कृपान लै करैगो गनि अंत की।
करद कलीन सों बियोगिनी गरद ह्वै हैं
बे दरद सेना सजी शरद समंत की।।

(ख) सेल सम लागत फुलेल तेल अंगन मैं।
शूल सो तमूल औ त्रिशूल तूल तंत यह।।
शरद के अंत बचो केहू भाँति अंत अब।
कंत बिन हंत होन चाहत हिमंत यह।।

विरह वर्णन

'रस-रसांग-निर्णय' और 'शृंगार-शिरोमणि' में रस और नायिका भेद विषयो की व्यवस्थित और विशद विवेचना हुई है और इन्हीं संदर्भों मे सयोग की ही भाँति विप्रलंभ शृंगार की मार्मिक रचनाएँ सामने आती हैं। यह वियोग वर्णन धारावाहिक रूप मे न होकर विविध मुक्तको मे स्वतंत्र रूप से कथित हुआ हे फिर भी यह वियोग वर्णन पर्याप्त विशद है तथा विरहिणी की नाना भावदशाओ या मनस्थितियो का निरूपक बन पडा है। पूर्वराग या प्रणयारंभ की स्थिति मे अभिलाष हेतुक जिस वियोग की चर्चा शास्त्रग्रथों मे मिलती है उसके भी दो एक सरस उदाहरण सामने आते है। प्रेम है जो नायक नायिका मे या कृष्ण और एक गोपिका विशेष में जागृत हो चुका है। मिलन हो ही नहीं पाता, नायक अपने भाग्य पर भरोसा रखे हुए है और आशा के ततु के सहारे जी रहा है और नायिका को लोक बाधा बेतरह बेचैन किए हुए है तथा तरह तरह के सकल्प विकल्पों में उसका मन व्याकुल हो रहा है - यदि वह पत्र लिखकर भेजे तो पता नही क्या हो उन्हें पत्र मिले न मिले, फिर प्रिय की इच्छा और रुख का पता चलना चाहिए या पत्र यों ही लिख देना चाहिए। इस सबके ऊपर लोक का डर भी तो कुछ कम नही। न प्रिय के आगमन की कोई सूचना है और न उसका बुलावा ही फिर बेचारी करे तो क्या करे -

आइबे की चरचा न कहूँ न बुलाइबे की बतिया ही सुनाइये।
तौ पुनि कैसे मिलैं हम आय उपाय कछू अब आपै बताइये।।

उधर नायक मे भी विकलता की कमी नही किंतु वह धैर्य धारण किए हुए है और अधिक आशावान है -

जो अनुराग हमारो ब्रजेश तौ थाग भलाई कबौं जगि जायगी ।
प्रेम भरी मम बातनि मैं कबहूँ वह प्रानप्रिया पगि जायगी ।
धीर धरे रहौ पीर बिसारि वियोग की भीर सबै भगि जायगी ।
फेरि हरे हरे कुंज मैं मंजु हरे हरे आनि गरे लगि जायगी ।।

सयोग से मिलन की घड़ी भी आती है परन्तु अभिलाषाओ की भीड़ और लज्जा की अधिकता के कारण संयोग होकर भी संयोग नहीं होने पाता तथा वियोग की व्यथा और भी घनीभूत हो उठती है -

भागन सों कहूँ देखि परे तो अभागिन लाजन ही मैं सनी रहीं ।
व्याकुल सी बिन देखे ब्रजेश हमेश वियोग विथा की धनी रहीं ।
स्वाति स्वरूप के आसरे मैं पपिहा सी पियास के ताप तनी रहीं ।
वै निरमोहिनी आँखिन सों मिलि ये अँखियाँ दुखिया ही बनी रहीं ।।

घनआनद मे इस प्रकार के कथन अनेक है ।

प्रणयी जीवन मे अतत: वियोग हो कर ही रहता है । गोपियों के प्राणवल्लभ कृष्ण को भी कंस की आज्ञा मे ब्रज छोडना पडता है । मथुरा जाने से पहले वे घर-घर जाते है और एक-एक गोप-गोपिका से मिलते हैं । वियोग की घड़ी आ गई है, जो थोड़े ही दिनो के लिए है परन्तु भविष्य का ठिकाना ही क्या । आसन्न वियोग की इस मार्मिक घडी मे गोपियों के पारस्परिक मनोभाव कैसे हो रहे हैं जरा इस छंद मे देखिए -

कंस निदेश तैं साथ अक्रूर के जात ब्रजेश अरी कसि फेंटि हैं ।
गेहन गेहन मैं सबही के सदेहन जाय सनेह समेटि हैं ।
बालपनै तें रहे ब्रज माहिं मिला-मिली कै मन के दुख मेटि हैं ।
भेंटत हैं अबै मोहिं भटू अबहीं हरि तोहिं भुजा भरि भेंटि हैं ।।

अभी तो प्रिय का वास्तविक प्रवास हुआ नही है और आसन्न वियोग से त्रस्त प्रेमिका की सांसो की यह दशा है किंतु वियोग जब घट जाता है तब तो सोचना बिसूरना ही उसका एकमात्र अवलंब हो रहता है - रोते रहना, दुख सहना, रात-रात जाग कर प्रतीक्षा करना ही उसका काम रह जाता है । अवधि की आशा मे प्रिय आगमन की निराश कर देने वाली आशा के सहारे वह कब तक आँसुओं मे नहाती रहे, विकलता क्षण भर के लिए भी उसका साथ नहीं छोडती, कामदेव शरीर को ध्वंस किए डालता है, उसका किसी के द्वारा निवारण नही हो पाता, कमल के शीतल कारी पत्तों के बिछावनो मे भी कुछ होना-जाना नहीं, मात्र वनमाली की प्रतीक्षा ही उसका जीवन बना हुआ

कान्तिक विरह की ऐसो मर्मपीडक स्थितियों का नाना रूपों से नाना छदों मे निर्वच है । ब्रज की गोपियाँ ही सच्चो विरहणियाँ है, विरहाग मे कितना तलझना पड : वे ही जानती है- 'जानै ब्रजेश जू वेई वियोगिनो है विरहागि मै केती तलूझन कोई वियोग की विषवेलि मे उलझने का स्वाद चखना चाहता हो तो उसे ब्रज व वेलियो की आह-कराह सुनना चाहिए और बिछुडने की व्यथा कैसी होती है उ नसे ही पूछना चाहिए । वियोग मे प्रिय के रूप का ध्यान किया जाता है, उस का स्मरण किया जाता है, उसके कार्यो का चिंतन किया जाता है । इस ध्या : और चितन के पथ मे प्रिय अपनी विपुल रूप राशि लिए खडा रहता है -

भूषन अंग जराऊ ब्रजेश जरी पट दीजुरी को मद नाखैं ।
सूधो सुभाव सुशील के वैन कछू उलही उर मैन की साखैं ।
प्रानन ते मन ते छन एक न भूलै सरूप किए बिधि लाखैं ।
लॉबी लटैं वह पातरी देह सनेह भरी वै बडी बडी आँखैं ।।

किंतु यह तो मानस साक्षात्कार है, अतश्चक्षुओं का दर्शन है, नेत्रों द्वारा प्रत्य नहीं । वियोग में भला प्रत्यक्ष-दर्शन कहाँ ।

वियोग की बेकल कर देने वाली तथा नाना भावो से मन को झकझोर देने वाल ों का कवि ने चित्रण किया है -

(क) आठो याम जागि विरहागि मैं लहकि बाल
दहकि दवागि लौं उसासनि भरति सी ।
कहत ब्रजेश सोचि सोचि के सॅयोग सुख
व्याकुल वियोग सर बूड़लि तरति सी ।।
आगम विचारि कबौं उर मैं धरति धीर
वीर बिन धीर पुनि पीर मैं परति सी ।
छामोदरी छोहति सी छवि सों बिछोहति सी
जोहत तिहारी मग मोहित मरति सी ।।

(ख) ताप मैं ताय रहो तन तीय को ताकी न तीक्षनता हरि जायगी ।
प्रान रहे रुकि औधि की आस मैं ना तो उसास बिदा करि जायगी
यों विरहागि बढी है ब्रजेश बयारि के लागत ही बरि जायगी
जाहुगे जो पै नगीच न मोहन मोहनी मीच बिना मरि जायगी ।

विरह तो ऐसी व्यथा है जो होने से पहले ही प्रेमियों को सताने लगती है । नवव त्त में पलने वाली प्रेम की सुकुमार बल्लरी आगत वियोग का ताप नही सह सकती

इस आशंका से नई प्रणयिनि तो क्या उसकी सखी तक आशंकित हो उठती है और प्रिय के समीप जा कर आसन्न व्यथा की पूर्व सूचना देती है और प्रिय का प्रवास टालने की कोशिश करती है -

प्रभात पयान को हेतु विचारि अचेतु सी ह्वै तन ताय न जाय ।
लगो अब ही मुख सूखन लाल नए दुख मैं दुबराय न जाय ।
दवागि की झारनि ज्यौं लतिका विरहागि की झारनि झाय न जाय ।
ब्रजेश नई दुलही के हिये उलही रति बेलि झुराय न जाय ।।

और जब वास्तविक वियोग की पीड़ा होती है तब भी सखियाँ संघटन के नाना उपाय रचती हैं -

चलो बन मैं बलि ब्याकुल बाल बिना सुधि पीर मैं पागि न जाय ।
लतानि के गेह मैं दूबरी देह विदेह की दाहनि दागि न जाय ।।
ब्रजेश जहाँ तहाँ ज्वालमुखी जनु ज्वाल महाजुरि जागि न जाय ।
वियोग की आगि तैं दोह दवागि सी आगि निकुंज मैं लागि न जाय ।।

वियोग की इस अवस्था के वर्णन मे प्रिय कुछ बहुत दूर नहीं जान पड़ता, लगता है वियोगियों की भौतिक दूरी अधिक नहीं, मानसिक दूरी ही विशेष है । जो हो, विरह भावना का निवेदन बहुत जोरदार है, बहुत मार्मिक है । अतिशयोक्ति पद्धति पर आधृत होते हुए भी पूर्ण प्रभावशाली है ।

वियोगिनी के चित्त की अनेक अवस्थाओं का कवि ने वर्णन किया है : कभी वह विदेश गए प्रिय के सुखद कार्य कलापो का स्मरण कर कर के पीड़ा का (और संभवतः कुछ अकथनीय सुख का भी) अनुभव करती है । वियोग धीरे-धीरे बढ़ता हुआ रोग का रूप ले लेता है । वैद्य तो अनेक हैं पर वह अपना रोग किस-किस को बताती फिरे ? रोग बताया भी नही जा सकता और छिपाया भी नहीं जा सकता । संताप बढ़ता है और व्याधि भी बढ़ती है और शरीर इसी में दिन-दिन छीजता जाता है पर वह जानती है कि उसका रोग क्या है और उस रोग की औषधि क्या है । जब तक वह औषधि न मिले अपने रोग का निवेदन वह क्या करे - 'वैद हमारो विदेश मे है बलि वेदन कासो निवेदन कीजिए ।' प्रिय का पत्र कभी आता है तो उसकी दशा देखने योग्य हो जाती है, कभी उसकी बाँई भुजा फड़कती है तो वह इस शुभ लक्षण को देख कर आनद से गदगद हो जाती है और प्रियमिलन के सुख को समीप समझती है । नायक की वियोगाकुलता न दिखाकर ब्रजेश जी ने नायिका की ही अनेकानेक मनोदशाओं का चित्रण किया है- कभी वह अपनी विरह व्यथा को भूल कर सखियों के बीच बैठी होती है और कोई

सखी उसके प्रिय का नाम लेकर उसका घाव हरा कर देती है, कभी प्रिय से मिल कर उसकी सखी पत्र ले आती है पर सास के सामने वह लज्जा सकोचवश प्रिय का समाचार नहीं पूछ पाती और कभी वह सब देवताओं का भजन पूजन छोडकर सिर्फ महेश मंदिर में ही जाती दिखाई गई है। इस प्रकार नाना रूपों में वियोगिनी की प्रेमदशा प्रत्यक्ष कराई गई है।

वियोग के अनंतर मिलन

दीर्घकालिक वियोग के अनतर प्रियमिलन के मनोहारी प्रसग का उल्लासमय वर्णन मिलता है। प्रिय के आगमन की बेला निकट आ पहुँची है, मुग्धा की वाम भुजा फडकती है और हृदय की धडकन भी कुछ तेज हो जाती है। पास-पडोसी, दास-दासी सब उसकी ओर देख-देख कर थोडा मुस्कराते है, कोई धावन महासुख राशि के आगमन की सूचना भी दे जाता है और भोर के समय अटारी पर आ बैठे कौवे को नंद उड़ा चुकी रहती है। इस प्रकार सारे शुभ चिन्ह गोचर हो रहे है। क्षेमकरी चिडिया दिखाई दे जाती है. सास भी प्रसन्न दिखाई दे रही है। इस प्रकार सारे शुभ चिन्ह गोचर हो रहे है। ऐसी परिस्थिति के बीच वियुक्त प्रेमिका का उमडता हुआ हृदयोल्लास चित्रित किया गया है, वह अपनी सदेश वाहिनी सखी को मुँह माँगा इनाम देने को तैयार है - 'होयगो जो मन भायो हमारो इनाम तौ पाइहै तू मनभायो।' प्रियागम का सदेश वहन करने वाले धावन का आना क्या था उसके तन मन की दशा ही बदल जाती है -

धावन को आवन सिधावन वियोग दुख
धामन बधावन के ध्वनि सो भरति है।
कहत ब्रजेश आजु अंगना उमंगन मैं
अंगन मैं आनंद की आभा उघरति है।
देवन समेत गुरुदेवन के लागि पग
हेतु दछिना के पट भूषन धरति है।
प्रानपति आगम की विरह विघाती पाय
पाती रति राती छाती शीतल करति है।।

वियोग वेदना तिरोहित हो जाती है। उमग मे भर भर वह आँगन मे अपनी रूप की आनदमयी शोभा बिखेरने लगती है, देवताओ और गुरुजनो के चरणस्पर्श करती है ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देने के लिए वस्त्राभूषण निकाल-निकाल कर रखती है और प्राण प्रिय की विरह-विनाशिनी पत्रिका पाकर उसे अपने हृदय से लगा-लगा कर एक अकथनीय शीतलता और प्रसाद का अनुभव करती है। किसी किसी छद में ऐसी ही परिस्थिति के बीच

मालिन और सुनारिन की प्रसन्नता का भी आलेखन किया गया है -

(क) विटपान के बीच वितान घने उरझाय लतान अतूलो फिरै ।
मधुभाग प्रसून के भार ब्रजेश सुगंध के भारनि झूली फिरै ।

(ख) गुन रेसमी केते जरी के जमा किए पीर गई पटहारिनि की ।
सुनि कैं पिय आइबे की पतिया छतिया सियरानी सोनारिनि की ॥

एक मुग्धा का प्रिय, प्रवास की अवधि पूरी करके वापस आ गया है । सखी ने शाम से ही उसकी सेज सँवार दी है और उसे समझा बुझा भी दिया है पर वह लज्जाधिक्य वश रतिभवन में प्रवेश नही कर पा रही, सोच और सकोच की मूर्ति बन कर द्वार पर खडी हुई है यद्यपि उसके हृदय-वृत पर रति की बल्लरी लहलहा उठी है -

मति कौन करै ढिग जाइबे की रति भौन के द्वार मैं ठाढी बिसूरति ।
उलही उर मैं रति बेलि तऊ तुलही भई शोच सकोच की मूरति ॥

अन्य रस और भाव

यह तो हम पहले ही कह चुके है कि ब्रजेश जी की समस्त काव्य राशि हमें सुलभ नही । उनके कृतित्व के आकलन का प्रस्तुत प्रयत्न मुख्यत. उनके दो ग्रंथो 'रस-रसाग-निर्णय' और 'शृगार-शिरोमणि' के आधार पर किया गया है किंतु इसमे सदेह नही कि ये दोनों ही उनके सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रथ है तथा इनमे उनके कृतित्व का उत्कृष्टतम अश आ गया है । वैसे वे समय-समय पर स्फुट विषयो पर, सामयिक विषयो पर, भाव और कल्पना की तरग उठने पर परम्परागत साहित्यिक विषयों और प्रसंगों पर स्वतत्र मुक्तकों की रचना करते रहे हैं किंतु आज उनकी इस प्रकार की रचनाओ का न तो कोई संग्रह सुलभ ही है और न इस दिशा में मेरी जानकारी में कोई प्रयत्न ही हो रहा है । ब्रजेश जी के परिवार का ही कोई सदस्य इस सबंध में हमारी सहायता कर सकता है, अन्यथा सभावना यह है कि यह निधि ही विलुप्त हो जाए । अब हम थोडे से उन छदो पर भी यहाँ दृष्टिपात कर लेना उचित समझते हैं जो शृगार के क्षेत्र के बाहर के विषयों पर लिखे गए है । देशभक्ति और सामयिक विषयों पर उमडने वाली उनकी भावधारा का परिचय तो 'मोहन-चरित्र-माला' शीर्षक अध्ययन के अतर्गत दिया गया है किंतु कुछ ऐसे विषयों पर भी उनकी लेखनी चली है जो शृंगार सबधी तो नही है किंतु हिन्दी साहित्य परम्परा में जिनका चाल चलन बराबर रहा है ।

ये विषय हैं रामायण और महाभारत के, राम और कृष्ण के जीवन के विभिन्न प्रसगो से सबधित । कभी कभी शिव आदि की चर्चा भी आ जाती है । दूसरे ये विषय

शृंगारेतर सभी रसो मे सबद्ध है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन अतिरिक्त विषयो को ब्रजेश जी ने अपने ग्रथो म जो स्थान दिया है उसकी धारा दो कूलो से हो कर बहती है। उसका एक तट तो राम और कृष्ण ऐसे पौराणिक पात्रो के जीवन से अलकृत है और दूसरा रस शास्त्र या रस ग्रथों की रचना पद्धति से। स्पष्ट ही है कि ब्रजेश जी का शृंगार-बहिर्गत काव्य भी उनकी शृगारी काव्यसृष्टि के ही समान परम्परा म ही जकडा हुआ है। यह शृगार-बहिर्गत काव्य भी 'शृगार-शिरोमणि' मे तो स्थान पा ही नहीं सकता था क्योंकि 'शृगार-शिरोमणि' तो मात्र शृगार रस और उसके अंतर्गत भी नायिका भेद प्रकरण को ही लेकर लिखा गया है हॉ 'रस-रसाग-निर्णय' ग्रथ मे अवश्य दर्शनीय है। 'रस-रसांग-निर्णय' भी जैसा कि उसकी विस्तृत चर्चा मे तथा अन्यत्र ही हम बता चुके हैं मूलत· शृगार रस का ही विस्तृत विवेचन करनेवाला प्राचीन शैली का रीतिग्रंथ है किंतु उसमे अन्य रसो की सर्वथा अवहेलना नहीं कर दी गई है जैसा कि अनेक शृगार प्रेमी रीतिकवियों ने किया है और न अन्य रसों को शृगार मे ही अन्तर्भुक्त कर दिया गया है जैसा कि केशवदास आदि ने किया था। इसमे गौणत सक्षेप मे ही अन्य रसो का भी वर्णन किया गया है और इसी सदर्भ मे शृगार-भिन्न विविध रसो के तथा उनके स्थायी भावो के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए ब्रजेश जी ने शृगारोत्तर विषयों का स्पर्श किया है। इस स्पर्श का स्वरूप क्या है यहाँ सक्षेप मे यही दृष्टव्य है।

भाव क्या है ? स्थायी भाव क्या है ? अमुक रस किस प्रकार या किन स्थितियो मे निष्पन्न होता है ? इस प्रकार की रीतिशास्त्रीय चर्चा के दोरान ही ब्रजेश शृगारेतर विषयो का स्पर्श करते हुए हम बतलाते हैं कि मन ही नाना भावों का निवास स्थान है। भावो के नाना प्रपच और रग मनोघट में ही घटते और घुलते रहते है -

मन होत विरागी कबौं छन मैं अनुरागी कबौं अपने को गनै।
सुख भोग संयोग को चाहे कबौं छन ही मैं वियोग की ताप तनै॥
लहरैं उठैं ऐसी अनेक ब्रजेश नहीं ठहरैं उर माहिं छनै।
कबौं साह बनै कबौं चोर बनै कबौं राव बनै कबौं रंक बनै॥

शृगार का स्थायी भाव 'रति' कहा गया है किंतु आचार्य ने दांपत्य रति के अतिरिक्त भी रति के कुछ भेद ठहराये है जैसे पुत्र विषयक रति, देश विषयक रति, सखा विषयक रति, मुनि विषयक रति आदि। ब्रजेश जी ने कृष्ण जन्म के उत्साह-उत्सव-आनंद और आमोद-प्रमोद का वर्णन करके तथा बालक राम की बाल क्रीडाओं पर कौशल्या को मुग्ध दिखला कर पुत्र विषयक रति का वर्णन किया है -

(क) द्वार द्वार दधि कें चहल मग बंद भए
छन्द भए सरस गणेश शेष बानी के।

वृन्दावन चद भए ब्रज मैं अनंद भए
आज नँदनंद भए नंद नंदरानी के ।।

(ख) कौशिला गोद में धारि ब्रजेश करै सविनोद उछंग उछालन ।
लालन को मुख चूमि कै घूमि घरीक मैं झूमि झुलावती पालन ।।

देश विषयक रति का छद बहुत सुदर है, उसमें कवि की सच्ची देशभक्ति के दर्शन किए जा सकते हैं -

भारत है पितु भूमि है मातु घने सुत हैं हम प्रेमी हमेश के ।
भारतवासिन के हम बंधु निवासिन के गन बंधु ब्रजेश के ।
भारत के हित प्राण लगैं तो प्रदान मैं सोच करैं न कलेश के ।
भारत देश हमारो हितू है हुदै सो हितू हम भारत देश के ।।

कवि की देशभक्ति का भाव उसकी स्वतत्रता कृति 'मोहन-चरित्र-माला' मे और भी भव्य तथा प्रशस्त रूप मे देखा जा सकता है। कवि भारत देश का और भारतीयता का सच्चा उपासक है। सखा विषयक रति का वर्णन करने मे उसे रथचालन कर्म स्वीकार करने वाले अर्जुन-सखा श्रीकृष्ण की याद आ गई है और उसने बताया है कि सच्चा स्नेही और मित्र कैसा होता है, वह किस प्रकार मित्रहित में निमग्न होता है, अपना हित छोडकर मित्र के हित का विधान करता है। मित्र के मोह और अज्ञान को दूर करता है तथा उसे उसके करणीय कर्म का स्मरण दिला कर कर्तव्य पथ पर लगाता है -

सब भाँति सखा को सनाथ कियो यदुनाथ सनेही यथारथ के ।
अपनो तजि स्वारथ सोच्यौ सदा शुभ कारज मित्र के स्वारथ के ।
समुझायो ब्रजेश विमोह बढे कहे बैन घने परमारथ के ।
रथ आरथी के सम हाँक्यो हरी रण मैं बनि सारथी पारथ के ।।

मुनि अथवा ऋषि विषयक रति का वर्णन करते हुए कवि ने महाराज दशरथ की विश्वामित्रजी के प्रति श्रद्धा और भक्ति का वर्णन किया है - महाराज दशरथ विश्वामित्र जी से कहते है कि आपके प्रताप से ही मेरे पुत्रों ने राक्षसों का सहार किया है, आपके प्रताप से ही राम ने धनुष तोडा है तथा आपके ही प्रताप से वे यशस्वी हुए है। ऐसा कहते हुए वे विश्वामित्र के पदारविन्द की वदना करने लगते है।

हास्य का वर्णन करने के लिए ब्रजेश जी ने परपरा प्राप्त विषय ही चुना है, वही शिवजी की बरात का प्रसंग जिसमें वे एक दुर्बल बैल पर भुजग का मौर पहन कर विवाह के लिए जाते दिखाई देते है तथा उनके पीछे नग धडगे पिशाचो की बारात साथ होती है। इन कथनों अथवा वर्णन मे तो हास्योद्रेक की क्षमता नही है, हाँ आश्रय

को हसता हुआ दिखाकर हास्यरस की खानापूरी जरूर कर दी गई है - 'देखि दिगबर दूलह को मुख अंबर दै हँसै पाहुनो शैल की ।।' इसी प्रकार अक्रूर के साथ श्रीकृष्ण के चले जाने पर ब्रजवासियों की विषण्णता के वर्णन मे शोक का चित्रण तथा करुण रस का सचार कवि मानता है - वनमाली बिना ग्वालबाल रो रो कर बेहाल हो रहे है, ग्वालिने उत्साह पूर्वक दधि-मंथन नहीं करतीं, धेनुएँ निकुंजों में कलप रही होती हैं, वन के जीव अधीर होकर इधर उधर डोलते हैं तथा नद और नदरानी की महाव्याकुलता तो कहते नहीं बनती । यद्यपि रस शास्त्र के अनुसार यह वर्णन वियोग का ही माना जायगा किंतु कृष्ण के वियोग दु.ख को भीषण शोक का प्रसग मानना भावना के धरातल पर असंगत नहीं जान पड़ता । बधु नाश या स्वजन का अत भले ही न हुआ हो किंतु ब्रजवासियो के लिए कृष्ण का बिछोह अत्यत दारुण और करुण ही कहा जायगा । हरिऔध जी द्वारा वर्णित प्रिय प्रवास भी अत्यत कारुणिक हो उठा है क्योंकि कृष्ण ब्रजवासियों के जीवन धन थे और नैन तारे थे । क्रोध स्थायी भाव के उद्रेक और रौद्र रस के सचार के लिए कवि ने मेघनाद की कठोर वाणी सुनकर कुपित एवं आवेशमय हो उठे लक्ष्मण का वर्णन किया है । लक्ष्मण का क्रोधोन्मत्त रुद्र रूप सामने उतना नहीं आ सका है जितना अनुभावों की योजना द्वारा कवि ने दिखाना चाहा है । रौद्र रस या क्रोध स्थायी के प्रस्तुत उदाहरण से सिद्ध होता है कि वास्तविक रस सचार या निष्पत्ति के लिए कवि के हृदय की आंतरिक अनुभूति की सच्चाई और तीव्रता पहली शर्त है । उसके अभाव में रस व्यजना समर्थ नही कही जा सकती -

बैन घननाद के कठोर सुनि लक्षमन
जरि बरि उठे अंग आगि उर आनि आनि ।
भंग करि भौंहनि अभंग अभिमान करि
नैन लाल रंग मैं रहे हैं जनु सानि सानि ।।
कहत ब्रजेश विष व्याल सम फुंकरत
हुंकरत दंतन अधर दल भानि भानि ।
अंग मद देखि दशकंधर को नंद सौहैं
संधनत वान धनु कान लगि तानि तानि ।।

यहाँ अनुभवो के विधान द्वारा रस प्रकरण की खानापूरी की गई जान पडती है । इसकी अपेक्षा स्थायी भाव क्रोध के उदय का वह चित्रण अधिक अच्छा है जिसमे धनुर्भंग के अनंतर परशुराम जनक सभा में आते हैं तथा अपने गुरु शिव के पिनाक को खडित हुआ देख कर आवेश मे आकर कुछ अनुचित और अमर्यादित बातें कह डालते है और उनका जो प्रभाव धनुष को तोडने का दुष्कर किंतु सराहनीय काम करने वाले

राम पर पडता है उसमे ईषत् रोष का झलकना बडी सुदर और स्वाभाविक रीति पर दिखाया गया है

देखत ही शिव को धनुभग उमंग मुनीश हिए तें गए कछु ।
श्री भृगुनंद के बैन सुने रघुनंद के नैन सरोष भए कछु ।।

भावो का ऐसा ही सुदर और स्वाभाविक विकास काव्योपयोगी हुआ करता है । उत्साह स्थायी भाव के चित्रण एव वीरता की विविधता दिखाते हुए व्रजेश जी की दृष्टि शास्त्रोक्त चार प्रकार के वीरो पर गई है - युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर । युद्धवीर के रूप मे कवि ने राम का वर्णन किया है तथा उसमे वीरोत्साह का उन्मेष पद्धतिबद्ध शैली पर दिखाया गया है -

मंदर समान सौहैं देखि दशकंधर को
तेज तपभान त्रानबंद लागे तरकन ।
सुंडादंड सुंदर उदंड रघुनदन के
कालदंड ऐसे भुजदंड लागे फरकन ।।

उत्साह वाची 'उमाह' शब्द का प्रयोग करने मे (उर मैं अनद के उमाह लागे थरकन) छद में शास्त्र दृष्टि में 'स्वशब्दवाच्यत्व' दोष आ गया है । दानवीर के वर्णन मे शिवजी की प्रशस्ति की गई है जो दानियों के शिरमौर है क्योंकि 'देत एक फल फूल जे तिन्हे चारि फल देत ।' दयावीर के उदाहरण के रूप मे कवि ने श्रीकृष्ण का स्मरण किया है जिन्होंने द्रौपदी की दीन पुकार कर अपनी अपार करुणा का कोष मुक्त भाव से खोल दिया था -

धर्म करि दीन बैठे भीषण करण द्रोण
पांडव हू मौन तो रहाई कौन जग मैं ।
खैंचत दुशासन दुकूल नृपशासन तैं
द्रौपदी विलपि मन राखो कृश्न पग मैं ।
नाथ रुक्मिनी के यदुनाथ सुनि दीन बानि
द्रवि उठो उर दीनबंधुता उमग मैं ।
द्रुपद सुता की लाज काज दौरे द्वारिका तैं
पट कहूँ मुरली मुकुट कहूँ मग मैं ।।

धर्मवीर का वर्णन करते हुए भरत का स्मरण किया गया है जो स्वय सिहासन पर बैठने के वजाय अपने बडे भाई की पादुकाओ को सिहासनस्थ कर उन्ही की पूजा करते है और उन्ही से जैसे प्रेरणा और निर्देश लेकर राज्य सचालन कर गुरुतर कार्य किया

ग्ते है   क्षेम के सहित नव नेम के सहित पूजे प्रेम के सहित प्रभु पादुका भ
ात्य   इस तरह वीर रस के उदाहरण स्वरूप कवि पौराणिक देवताओ और पात्रो
ो लाया है वीभत्स रस के वणन मे कवि ने जो वर्णन किया है वह विरक्ति का उत्तेज
ही हो सका है क्योंकि उसमें जुगुप्साजनक व्यापारो का चित्रण नहीं है, वह उपदे
्लक ही विशेष बन पडा है-

प्रेम सों जाहि अँगोछत पोंछत ल्याय ब्रजेश सुगंध ललाम की।
भूलत जामैं अनंत विभूषन अंत समै नहिं एक छदाम की।
चाँदनी ऐसी चमाचम पै यह चाम चमारहु के नहिं काम की ॥

किंतु एक अन्य छद में जहाँ देहस्थ जुगुप्सा जनक शारीरिक उपकरणों का विस्त
दखलाया गया है वहाँ वीभत्स रस साक्षात् खड़ा हो जाता है -

मांस को पिंड जमें नख बार बिचार किए पै सबै सुख भज्जा।
श्रोणित औ चरबी सों भरी जकरी नसैं तापै कुरूप कुसज्जा।
ऐसी महा दुरगंधित देह सों त्यागु सनेह ब्रजेश निलज्जा।
ऊपर चाम चमाचम चीकनी अंतर मैं मलमूत्र औ मज्जा ॥

भयानक रस के प्रसग मे मेघनाद, कुभकरण आदि के निहत हो जाने, भीष
असुरवाहिनी के विनष्ट हो जाने पर रथ पर अकेला चढकर आता हुआ रावण हरि
ाषग के विषय में सोचता है और रणस्थल में पहुँचने पर राम के भयानक भ्रूभग
खता है तो एक बार उसका भी युद्धोत्साह भग हो जाता है -

संकट मैं प्राण तन मानहु अप्राण भयो
काँप्यो हदै सोचि बान हरि के निषंग को।
देखत ही राम की भयावनि भृकुटि भंग
रावन को भंग भो उमाह रन रंग को ॥

यहाँ भयानक रस की निष्पत्ति संदेहास्पद है। राम ने शिव का धनुष तोड दि
ह बात लोक मे विस्मय या आश्चर्य जगाने वाली हो गई -

भंग कियो छन मैं शिव को धनु लोग कछू बिसमै में रहे जकि।
नैन रहे थकि देखत रूप बखानत वीरता बैन रहे थकि ॥

और अद्भुत रस का संचार सूरदास आदि के ढग के वर्णन द्वारा 'मोहन क
उगिलौ माटी' वाले प्रसग मे दिखाया गया है। कृष्ण जब अपना मुँह खोलकर दिख
ागते हैं कि उन्होने मिट्टी खाई है या नही तो यशोदा कृष्ण-मुख मे चौदह भुवनो

दृश्य देखकर चकित और स्तब्ध रह जाती है कोऊ कह्यो माटी खायो कान्हर दिखायो मुख, यशुदा चकित भई चौदहो भुवन देखि ।'

शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों और भावो मे वैराग्य या निर्वेद के भाव को लेकर लिखे गए छदो की सख्या अपेक्षाकृत अधिक है । निर्वेद, शर्म या वैराग्य स्थायी भाव का रस शात होता है । ऐसे छदो मे ईश्वरानुरक्ति और ससार से वितृष्णा होने, जीवन को व्यर्थ गँवा देने पर पश्चाताप, पापकर्मो मे लिप्त रहने के कारण आत्मग्लानि, ससार की अनित्यता का भान, सच्ची योगदशा की प्राप्ति की कामना आदि के भव्य भावो का प्रसार देखा जा सकता है -

कब धौं बिलसैंगे बघंबर माहिं बिहाय कै अंबर कंबर व्याधि मैं ।
कब धारिहैं अंग बिभूति के भूषन वारिहैं भूषन भूति उपाधि मैं ।
कब जागिहैं योगिन के संग योग बिरागिहैं जीवन कै सुख साधि मैं ।
कब धौं मदमोह बिना जपि सोहं करैंगे शिवोहं शिवोहं समाधि मैं ।।

(१९६५)

शृंगार-शिरोमणि

कुण्डल कलित मनि मण्डित मुकुट गुंज
भृकुटी कुटिल प्रभा पीतपट छोर की ।
कहत ब्रजेश तैसी चन्द्रमुख चन्द्रिका की
चूनर की चारुता चकोर दृगकोर की ॥
वेनु वनमाल भाल तिलक अलक सोभा ।
नासिका मुकुत नथ नूपुर के सोर की ।
योवन के जोन्ह की जवाहिर के जेवर की
जोति की जरी की जेव युगल किशोर की

श्री ब्रजचन्द की गोद मैं मोद सों राधिका की छवि आज उद
विंधु मैं माल है मोतिन की किधौं सिंधु मैं तारावली सुख से
नीलम खंभ मैं हेम प्रभा किधौं काजर पुंज मैं दीपक जोति
इंदुकला तम के बन मैं घन मैं किधौं दामिनि की दुति होति

जगमगै दोहुन के भूषन जराऊ पट
दोहुन के जोति के तमासई रहत हैं ।
कहत ब्रजेश दोऊ सुख सों समेटिबे को
भुज भरि भेंटिबे को पासई रहत हैं ॥
दंपति सुजान दोऊ दोहुन के प्रान दोऊ
रूप के निधान रस एसई रहत हैं ।
प्रेम सों करत पान नैन तऊ दोहुन के
पानिप प्रभा के नित प्यासई रहत हैं ॥३॥

छाय रहे धुरवा नभ मैं मुरवा मन मोद मैं पागि रहे हैं ।
चातक दादुर बैन सुने उर मैन के दागनि दाग रहे हैं ॥
पावस मैं मिलि कामिनि कंत ब्रजेश त्रियामिनि जाग रहे हैं ।
आनंद सों अनुराग भरे दोऊ भाग भरे गरे लागि रहे हैं ॥४॥

कज्जल कलित लोल ललित चलित नैन
विलुलित वंक लट लंक मैं लुरति सी ।
कहत ब्रजेश रत्न-जटित पटित स्वर्ण
उपटित वर्ण गति गर्व मैं मुरति सी ॥
स्वच्छ तन सुस्तनी प्रसस्तनी समस्त जग
स्वस्तिनी सदैव बिज्जु दुति मैं दुरति सी ।
फरस स्फटिक अंस फटिक फनूसैं अस
फटिक दरी मैं असफटिक स्फुरति सी ॥५॥

उन्नत पयोधरी पयोधरी पयोधरी मैं
उन्नत पयोधरी अन्हायो आजु सुख मैं ।
कहत ब्रजेश ठाढी कूल मैं दुकूल पीरो
पैन्हि कटिकूल मैं गोराई गात मुख मैं ॥
कुन्तलनि आगे करि ऐंठि कछु कुंचित ह्वै
पानि सों निचोरै लट लागी पग नुख मैं ।
पंचबान पंकज के बान द्वै सनाल मानो
संधनत बाँधि गुन चंपा के धनुख मैं ॥६॥

दर्पन दरी मैं खरी सुंदरी दरप भरी
कंदरप कैसी परी बाँधि गुन बेनी के ।
जगमगै जोवन जवाहिर जटित अंग
जर कसे वसन ब्रजेश वर श्रेनी के ॥
मध्य मैं उरोजन के रोमावली राजै मंजु
त्रिवली वलित भ्राजै नाभि सुख दैनी के ।
मानो द्वै कलिंदन तैं कल्पित कलिंदी कढ़ि
मंडित करति कांति कुंड मैं त्रिवेनी के ॥७॥

मोद उर पूरै दमयंती के बिसूरे गुन
रुक्मिनी की महिमा हिये मैं चुनिबौ कं
जाने कौन भेद खेद मानै काम कामिनी सों
दामिनी सों पांडु भामिनी सों भुनिबौ व
कहत ब्रजेश लाज शील सुषमा की गेह
नेह प्रानपति मैं अछेह गुनिबौ करै ।
गीता ते अधिक मानि परम पुनीता प्रिया
पारवती सीता के चरित्र सुनिबौ करै ॥८

मांगै न मोगरा मालती हू अनुरागै न कंज कंदब के रूख
निंदति केवरा कुंद ब्रजेश चमेलिन बेलिन मैं घने दूखन
गेंदा गुलाब गुँधे गुलदावदी हेरत ही गजरै लगैं सूखन ।
अंग मैं चंपक रंग दुकूल विभूषित चंपक फूल के भूषन

माधुरता माधवी में ब्वै गई ब्रजेश औरै
काल्हि ही तैं मंदगति है गई करिंद की
औरै भाँति कोकिल कपोत कीर औरै भाँति
औरै भाँति इंदुदुति औरई फनिंद की ॥
लहलही लोनी लफवारी लता होन लागी
पागी तऊ मालती मैं मति है मलिंद कं
निकसन लागी है कली द्वै अरविंद की औ
बिकसन लागी हैं कली द्वै अरविंद की

कौन उत पातरी निपातरी चहति लंक
पातरी परति पीर पातरी परति ना ।
कहत ब्रजेश काकी नजरि न जरि गई
वजरि सी भई पग मंदता हरति ना ॥
होत जात उर मैं उकासु अनयासु वीर
सासु को न त्रास तैं हू दुख तैं डरति न
वेदन विचारै ऐसे वेदन के जाय ढिग
वेदन हमारो क्यों निवेदन करति ना ॥१

दैहों कछू उपहार न तोहि मैं हार के हेतु जो मोहिं खिझावती
होयगी सासु सरोष ब्रजेश न क्यों उपहासु को भेद बतावती ॥
फूले सरोवर मैं न अजौं किधौं फूले सरोवर मैं नहि पावती ।
माँगै सरोज के रोज प्रसून अली तू सरोजन की कली लावती ॥१२॥

सारस नैनी सखीन बचाय कबौं कर सारस लै चित चोरति ।
आरसी सारसी इन्दु ब्रजेश गयंदन मैं कबहूँ मति दोरति ॥
वंद मैं कंचुकी के नवला नित बंद नए नए नेह सो जोरति ।
घेर करैं घर की तऊ घूमि घरी घरी घाँघरि बाँधति छोरति ॥१३॥

आनंद उमंग बाल बैठी रंगरावटी मैं
संग मैं सखीन के सनेह सरसाय कै ।
कहत ब्रजेश मनभावन को ताहि समैं
आवन कहूँ तैं भयौ मोद उर छाय कै ॥
हेरत ही हरि को हेरायगो हरष ही तैं
हाँथ सों हिरानी हरिनी लौं हहराय कै ।
केलि को सदन त्यागि सोभा की सदन श्यामा
सासु के सदन बैठी बदन दुराय कै ॥१४॥

पिय पाले ब्रजेश परेवन खोलि पपीहन सों भुनिबोई करै ।
सुचकोरन आगि चुनाइवे व्याज अंगारन मैं हुनिबोई करै ॥
नहिं जानिए को दियो बाल सिखै इन लाल सिखै धुनिबोई करै ।
गुनिबोई करै हित कोकिन सो गुन कोकिन के सुनिबोई करै ॥१५॥

घाँघरी घेर घने की बनी शिर ओढ़नी तैसी जराउ जराई ।
छोटी नथूनी बडे मुकतान की छोटे उरोजन की छबि छाई ॥
देखिए देखन योग ब्रजेश सलौने स्वरूप की सुन्दरताई ।
द्वै महले पर वा दुलही नई द्वैज की ऐसी कला कढ़ि आई ॥१६॥

साँझहि साथ ननंद के सोवति मंद सखीन के फंद विचारि कै ।
पातहु के खरके परै जागि ब्रजेश अराति सी राति निहारि कै ॥

शासन सासु को केलि को भौन प्रभात समै तबहूँ रही हारि कै ।
वेनु बजाय जगावै प्रिया परयंक लौं प्रीतम के ढिग जाय कै ॥

आज श्याम संग मैं विभासित सुघर श्यामा
सॉसति अनेक सहि लाज औ मनोज की ।
कहत ब्रजेश रतिराज रति लाजै लखि
सोभा साज सौगुनी शृंगारन के मोज की ॥
केलि भौन कुंज मध्य जगर मगर जोति
फैलि रही फरस फनूसन के ओज की ।
जोवन के जोन्ह की जवाहिर की जामिनि की
जेवर की जस की जमी की जरदोज की ॥१८॥

संकलित अंक परयंक पै शशांक रस्मि
अंक भरि पी को भई श्रमित प्रभा अरविंदु ।
दर्शि प्रतिबिंबन ब्रजेश प्रीतबिंब पोंछै
बिंबाधर कंज दृग विमल कपोल इंदु ॥
मंडित कुचाग्र कांति झरत प्रसेद कन
लागि लट बंक लोल लुरित मुखारबिंदु ।
कंदरप दारक पै मानहु प्रदर्प भरी
चंद ते लै च्वावति प्रदर्पिनी पियूष बिंदु ॥१९॥

सोदरी शशोदरी कृशोदरी दरी में बैठि
लूटी मुक्ति मोदरी अनुक्त रति कोटी मैं ।
झारे स्वेद मंडित ब्रजेश टारै कुंतलनि
डारै भग्न भूषन प्रभग्न पट जोटी मैं ॥
पन्ना सों जटित वेंदा पटित ललाट दुति
छटित कुचाग्र पै गिरो है गति छोटी मैं ।
चंद को अमंद सुत चंद तैं मचलि मानो
मंद मंद आयो चलि मेरु मणि चोटी मैं ॥२०॥

मनुहारि कै मालिनि हौं कब की कर जोरि निहोरति।
श न जानि परै बिन हेतु नितै रस में विष घोरति ॥
ै अति आब के फूल गुलाब के फूलिबे ते मुख मोरति।
नी नहीं एरी अली वृषभान लली कली साँझहि तोरति ॥२१॥

शर्द पूर्णिमा में आजु शर्द पूर्णिमा सी तिय
पूर्णिमा सी पूरन प्रकासी केलि सुख मैं ।
संश्रमित सांत सी विमोहित ब्रजेश रति
झरत प्रस्वेद विंदु पूरित वपुख मैं ॥
रत्नहार मंडि पीन उन्नत पयोधर मैं
पानि धारि सोयो कंत कामिनी के रुख मैं ।
पंचसर मानो पंच सर मैं अन्हात पायो
पंच सर साथ ही चलायौ पंच मुख मैं ॥२२॥

केलि के सदन आजु वदन सरोज श्यामा
श्यामै प्रति रोज तैं अधिक आदरति है ।
कहत ब्रजेश बार-बार बलि हारि करि
व्यजन बयारि श्रम आपुहि हरति है ॥
कौन जानै कैसो भेद कैसो भाव कैसो मन
कान्हर समीप कैसो कौतुक करति है ॥
लाल करि लोचन विशाल माल तोरि-तोरि
स्याही बोरि-बोरि बाल विद्रुम धरति है ॥२३॥

आयो प्रान प्रीतम प्रभात प्रान प्यारी पौरि
दासी दौरि प्रात नेम लागी अनुसरने ।
कोऊ अन्हवावै कोऊ सौरभ लगावै अंग
आपु सैन हेतु सेज साज लागी धरने ॥
कहत ब्रजेश साजै पूजन समिधि कोऊ
आपु मैन पूजन की विधि लागी धरने ।
शीत लागी हरने शिशिर साली वारि आली
आपु वनमाली पै बयारि लागी करने ॥२४॥

सौहनि खात हौ कापै सरे कब के बलि जात हौ कापै वृथा डरि।
राखिहैं वेई सनेह सोहागिनी राख्यौ ब्रजेश जिन्हैं हिय में धरि॥
काम तिहारो न श्याम इतै नहि होहुगे पूरन काम ह हा करि।
पागे जितै मति जागे जितै निशि जाहु तितै अनुरागे जितै हरि॥
॥२५॥

लागे नहीं उर मैं छनक अनुरागै नहीं
जागै सब यामिनी सोवाएहूं न सोवती।
कहत ब्रजेश चलै कंत को कछू न बस
रस के समै में अनरस बीज बोवती॥
रोष भरे वचन अनेक बार-बार कहि
दोष भरे अधर कपोल दृग जोवती।
पीर भरे बैनन मैं तीर भरे सैनन मैं
नीर भरे नैनन मैं नाह ढिग रोवती॥२६॥

अंग अरसात आए प्रीतम प्रभात ऐन
बूझि कुशलात बैन बोरि रस भाखी तू।
कहत ब्रजेश प्रतिदिन तैं अधिक प्रेम
नेम तजि क्षेम छन छन अभिलाखी तू॥
अधर पियूष प्रानपति के करत पान
मान मन आनि मनभावती न माखी तू।
जान्यो नदनंद सब तेरो छलछंद प्यारी
केते फंद डारि नीवी बंद बाँधि राखी तू॥२७॥

प्रीतम जात सदा सबके ढिग प्रीतमा होती घनी सबही के।
तैं ही अनोखी ब्रजेश परोस में रोस मैं पोखी मनो अति नीके॥
मारहु तैं सुकुमार महा तिन्है फूल की मारु करै मन फीके।
राखु री आपनो माखु री बीर गुलाब की पाँखुरी लागि हैं पी के॥२८॥

आए अरसीले कहूँ रमि कै रसीले लखि
स्वेद सरसीले रही रोस मैं सुमुखि सानि।



कहत ब्रजेश खुलि खोलती न भेट खद
बाल अलबेली नहिं बोलती मधुर बानि ।।
हा हा करि कैसहू हदैं सों परिरंभ्यो पीय
प्रेम के सहित चाह्यौ नीबी परसन पानि ।
शंक बिन प्रीतम के अंक तैं उतरि पर
यंक तैं उतरि बैठी बंक भृकुटीन तानि ।।२९।।

साँझहि रूखो भयो मुख कालिह न कारण ताको कछू पहिचान्यो ।
अधिक राति लौं भाँति अनेक ब्रजेश अलीन हूँ सों रिस टान्यो ।।
आय गए घनश्याम घरीक मैं देख तिन्हैं मन रूप लुभान्यो ।
जान्यो न कोऊ भयो कब मान मनायो कोऊ कब राधिका मान्यो ।।३०।।

आलिन को न चल्यो बस राति मैं भाँति अनेक विचारत ही बन्यो ।
बारहि बार विनीत ब्रजेश को व्याकुल ह्वै बलिहारत ही बन्यो ।।
मान घरीक ही मैं तजि राधिकैं घूँघट को पट टारत ही बन्यो ।
प्रीतम को कर जोरत हेरि निहोरत हेरि निहारत ही बन्यो ।।३१।।

मान्यो न मानिनी मान भरी मनमोहन हू बहु भाँति मनायो ।
गाउँ की हारि गई बलिहारि कै आली किती मनुहारि सुनायो ।।
बाल सो पै न ब्रजेश चल्यौ बस लाल बिहाल है सीस नवायो ।
प्रीतमैं पाँय पलोटत हेरि प्रिया हँसि प्रेम सों कंठ लगायो ।।३२।।

बावरे लौं बन मैं बिहाल हौ बिरह जाके
व्याकुलता रावरी सों नेकु न प्रमानती ।
जाके बिन ह्वै रहे ब्रजेश बिन चेत आप
चैत हू की चाँदनी न चेत चित ठानती ।।
बृन्दावन चंद हो बिहारी बलिहारी मान
गाय हारी गाउँ की रिझाय हारी आन ती ।
शीश नाय नाय हारीं बिरह सुनाय हारीं
सखियाँ मनाय हारी कैसहू न मानती ।।३३।।

भाग हमारो उदै भयो आजु भयो अनुराग सों जो इत आवन।
अंक में लागि अनंद में पागि रहौ परयंक में सोय सुहावन
रावरे की रुचि हेतु ब्रजेश मनावती हौ विधि सों परि पावन
प्रेम समेत चहै उत ही रहौ क्षेम समेत रहौ मनभावन ।।३४।।

आए प्रभात समै अरसात प्रिया उठि आदर सो गहि हाथ को।
केलि के गेह मैं लाय सनेह मैं लीन्ही लगाय हिये निज नाथ को ।।
राति ब्रजेश रहे संग सौति के जानि न जाय कोऊ यहि गाथ को।
ओठ को अंजन पान कपोल को प्रेम सों पोंछ्यौ महावर माथ को

मज्जन आपु करावती प्रीतमै लै चरनोदक चित्त के चायन।
व्यंजन भाँति अनेक जिमाय ब्रजेश बनावती बीरी सुभायन।
सैन के हेतु सजावती सेज डुलावती बीजन लै सुखदायन।
प्रान प्रिया श्रम हारि बिहारि निहारि निदेश पलोटती पायन

बलि आए गोपाल विशाल बने रहीं बाल जिते नित मंजन ह्वै ।
चित चाह ब्रजेश कै चूमिबे की पिय प्यारी कपोलन कंजन ह्वै ।।
दुरि पीठि मैं पानि सों दूसरी कौ दृग मूँद लिये युत अंजन ह्वै।
रति रंजन के पिंजरे मैं मनो फरकै मनरंजन खंजन ह्वै ।।३७।।

मंजन कराय पहिराय पट अंजन दै
कंज खंज मीन मृग वारत ही रहतीं।
कहत ब्रजेश करि कंठ श्री कलित कंठ
छवि उपकंठ मैं निहारत ही रहतीं ।।
माल मुकतान की सुधारि सुख देनी कबौं
बेनी गूँधि गूँधि बलिहारत ही रहतीं।
ब्रज सरदार श्याम श्यामा सुख साधिका को
राधिका को सखियाँ शृंगारत ही रहतीं ।।३

आज विदेश तैं आगम पीय को तीय समागम कै श्रम हारियो।
सेज सजाय ब्रजेश सखीन तैं खीन तैं खीन जरी पट धारियो ।।
पान खवाय कछू बतराय हरे हरे घूँघट को पट टारियो।
बाँधौ न जो समुझाय हू किंकिनी नूपुर तौ पग ते न उतारियो ।।३९

कौल कली ते लली अबहीं यह रीति भली नहीं जो उर दाहिये।
जानी नहीं बरजोरी ब्रजेश करी बरजोरी अजौ मुख आहिये ।।
बेसुधि बाल नवेली पदी तलबेली तिहारी कहाँ लौं सराहिये।
काल्हि करी निरदै मति जैसी तुम्हैं निरदै मति ऐसी न चाहिये ।।४०।।

उमंग सों प्रीतम अंग लगावत पै रतिरंग न मोहि सुहाय।
ब्रजेश कवौं रति बाहिरी हेतु मरू करि देति हौ सेज मैं पाय ।।
प्रवीन लली के निशा के चरित्र विचारि अली मन मैं मुसकाय।
हँसायो प्रिया को पुनीत तिया विपरीति को चित्र विचित्र बनाय ।।४१।।

वृंदावन गैल ह्वै गई हौं नंदगाँव काल्हि
मिलि श्याम छैल सो बिकानी छवि जाल मैं।
कहत ब्रजेश तबही तैं मतवारो मन
न्यारो नहीं होत लागो मदन गोपाल मैं ।।
मंद मुसकैबो बिसरै न बतरैबो वह
बाँसुरी बजैबो धरि अधर प्रवाल मैं।
कौन सुरझावै सुरझाइबो कठिन आली
नैन उरझे हैं वनमाली वनमाल मैं ।।४२।।

खरी चटसारिका मैं लट खोले विराजि रही पट मैं दुति फूटि।
ब्रजेश अकेली अचानक पाय चवाइन की चरचा गई छूटि ।।
चलावत पानि उरोज पै ऐसी लई उपमा कवि मौज सों लूटि।
वृषध्वज के गिरो माथ मैं मंजु मनो मकरध्वज को ध्वज टूटि ।।४३।।

काम कैसी बेटी प्रभा पुंजनि लपेटी काल्हि
कुंजनि मैं भेंटी काहू भाँति भरि अंक बाम।
कहत बजेश तबही तैं भई व्याकुल सी
बावरी सी व्यथित बिकानी सी गई ह्वै छाम ।।
कहाँ जाउँ कासों कहौं कैसे कै मिलाऊँ वाहि
जागि सी परति विरहागि उर आठो याम।
मिलिबो कठिन श्याम पति सों विपति महा
पास ही मैं पति है रहैगी पति कैसे राम ।।४४।।

भोर ही काहू अहीर की कामिनी नीर के हेतु गई छाँवे बाढी
साथ सखीन की भीर मै आई गलीन की भीर म घूघट काढ़ी
देखत ही बलबीर को वीर ब्रजेश अधीर भई अति गाढ़ी ।
कालिंदी तीर मैं नैन तुनीर तैं सैन के तीर चलावति ठाढ़ी ॥४५॥

चोरिन मैं ब्रजगोरिन के ब्रजखोरिन मैं करि कै नित फेरे ।
जे कबहूँ लहि घात ब्रजेश गरे लगि जात हैं साँझ सवेरे ॥
जो विधि ऐसी करै विधि तौ सखि भाग सोहाग सबै विधि नेरे ।
ब्याह बनै वेई मोहन सो अरु नाह बनै वेई मोहन मेरे ॥४६॥

बदन बथोरि डारे बेनी गुन छोरि डारे
तोरि डारे हीरन के हार उर तोर तैं ।
फारि डारे बसन विभूषन बिदारि डारे
झारि डारे केशरि कपोल श्रम नीर तैं ॥
कहत ब्रजेश प्रभा सिगरी बिगारि डारे
गारि डारे गात कत होति है अधीर तैं ।
भागन बची हौं भागि भृंगन की भीर तैं
बिहंगन की भीर तैं कुरंगन की भीर तैं ॥४७॥

मोर को मुकुट माथ वैसई लकुट हाथ
पीतपट वैसई हसनि सुखदाई है ।
वैसई बिलोचन बिलोल बनमाल बेनु
देखु बलि बेश मानो साचुहि कन्हाई है ॥
कहत ब्रजेश बहु रूपिनी विचित्र यह
रूप सों लहैंगी बकशीस मन भाई है ।
जौन काल्हि बाल आई बैद गुन माल बनि
आजु वही ग्वालिनी गोपाल बनि आई है ॥४८॥

कंस निदेश तैं साथ अक्रूर के जात ब्रजेश अरी कसि फेंटि है ।
गेहन गेहन में सबही के सदेहन जाय सनेह समेटि हैं ।
बालपने तैं रहे ब्रज माहिं मिला मिली कै मन के दुख मेटि हैं ।
भेंटत हैं अबै मोहिं भटू अबहीं हरि तोहिं भुजा भरि भेंटि हैं ॥४९॥

लन्ना छोर न छाडत हौ छिगुनी का छला लखि के छबि छावनो है ।
अनि नीको बनो बड़े दामनि को तौ कहा तुमको कछु पावनो है ॥
न दिखाइहौं नेकु न दैहों ब्रजेश वृथा बकवाद बढावनो है ।
परखाइहौं काहू जवाहिरी पै खरो खोटो जु पै परखावनो है ॥५०॥

अनुशासन मानि अनंद सो जाहुँगी छोटी ननंद हौं रावरी मैं ।
चरचा सुनी पै उतपात की एक करै उतपात विभावरी मैं ॥
उत देत ब्रजेश उरोजक मैं घट लेत बनै न उतावरी मैं ।
भई बावरी सी अबही मैं अली बली वानर है वहि बावरी मैं ॥५१॥

घेरि घन आए तापै निपट भई है साँझ
घन वन माँझ कुंज कालिंदी कगर की ।
तैसे गाँव गाँवन की और सब ठाँवन की
गोपन समेत गोपी गवनी सगर की ॥
कहत ब्रजेश कासों बूझिए मते की बात
तुम सब जानो घात ब्रज के बगर की ।
देहौं दान गोरस को आओ मन मोहन
बताओ ग्वाल छैल गैल गोकुल नगर की ॥५२॥

दै पट साँझहि सोवति सासु जगाए कबौं सखियाँ नहिं जागती ।
ता पै सरोसिनी मो पै ब्रजेश परोसिनी हू न इतै अनुरागती ॥
प्रीतम की अबै औधि है दूरि विसूरि यही विरहागि मैं दागती ।
सावन की यह यामिनी राम हमैं यम कामिनी के सम लागती ॥५३॥

कोमल कंज से पानि मैं कंदुक कान्ह की ओर उछालि चली गई ।
मालनि तोरि विथोरि कै मालती लालन सों करि लालि चली गई ॥
चंपक के वन ओर ब्रजेश चितै कीर चेटक डालि चली गई ।
घेर के घाँघरे की वह ग्वालि घरीक मैं घूँघट घालि चली गई ॥५४॥

मंद मंद मारुत मलय मकरंदयुत
वृंद-वृंद गुंजत मधुप बिन दाव के ।

फहरै फुहारे नौल नहरै ब्रजेश चलै
विजन विमल सीचे सौरभित आब के
प्यासे तुम पथिक मवासे को न योग इतै
सासे पंथ प्रबल मयूष महताब के।
मोदमयी मंजुल निकुंज के निकट आगे
मिलिहैं मजेजदार मंदिर गुलाब के ॥५५॥

प्रात परयंक मैं उमंगि उठि बैठी बाल
मानहु अनंग रस रंग रली काहू सों।
कहत ब्रजेश परदेश मैं तिहारो पति
होयगी अपति चरचा जो चली काहू सों
मंद मुख जोति छल छंद न छपैगो तेरो
छूटे बंद कंचुकी के गई छली काहू सों।
जगन लगी है सब यामिनी दृगन लाली
जानति हौं लगन लगी है लली काहू सों

आए न प्रीतम हू परदेश तैं पावस के दिन आए विशेखि कै।
आनंद को उमग्यो उर अंबुधि मानहु इंदु मनोरथ पेखि कै ॥
न्योते गए सब लोग ब्रजेश सँयोग कहूँ सनबंध को लेखि कै ।
दूनो भयो सुख पूनो निशागत सूनो परोसिन को घर देखि कै ॥५७

उपकंठ मैं बोलति कालिंदी के यहि क्वैलिया कंठ कुठार परै।
विकसे अरविंद मलिन्दन पै इकबार ब्रजेश तुषार परै ॥
जरि जाय समीर अरी जेहि के पर पीर को नेकु न भार परै
सुख मैं दुख देत सँयोगिन को मुख मैं ऋतुराज के छार परै

बाजरो उजरि गयो बरि गयो ज्योंत भले
ज्वाँरि जरि जान दे करौंगी नव नेत मैं।
कहत ब्रजेश बन सूखे सूखि जान दे री
ऊख बिन होयगी न हानि मम हेत मैं ॥

अबही सुने हौं मैं अनोखो उपचार बीर
बैहौं नए नए खेत सींचि रस रेत मैं ।
चेत आनु चित मैं सकेत को न सोच करु
तेरे हेत राखिहौं हरीरे सन खेत मैं ॥५९॥

वाटिका तेरई भागन सों भट्ट माइके तैस घनी ब्रनी पास है ।
त्यौं विटपान लतान वितान तैं भानु उएहू न होत उजास है ॥
बीर बियोग की पीर बिचारि ब्रजेश बृथा कत होति उदास है ।
श्याम सँयोग के आसरे में रहु सासुरे में सब भाँति सुपास है ॥६०॥

को बन जीवन के परो बैर ब्रजेश वृथा रस मैं विष घोलत ।
सोय रहे श्रम खोय विभात को साँझहि तैं कहूँ पात न डोलत ॥
सोर सुने अबहीं यहि ओर मरोर भरो हमरो हियो छोलत ।
बाग मैं वेगि बिलोकु तौ बीर बसेर लै काहे विहंगम बोलत ॥६१॥

जोबन जलूस जगमगत जरी के पट
जेवर जटित जोति होति जोन्ह जाला सी ।
लोचन विलोल काँति कलित कपोल गोल
लोल अलकावली सघन घन आला सी ॥
राग रूप रंग मैं घृताची सी तिलोत्तमा सी
रंभा सी ब्रजेश मैनका सी मनिमाला सी ।
बाला मैनबाला सी विचित्र चित्रवाला बनि
बैठी चित्रशाला मैं विशाला चित्रशाला सी ॥६२॥

मो पर जो अनुराग तिहारो ब्रजेश तौ भाग बड़ो मम भालन ।
पै गुरू लोगन के बिन योग सँयोग न ह्वै सके कौनि हूँ चालन ॥
माल दिखाय कै मोतिन की यह मातु के शासन को करि पालन ।
प्रेम सों काल्हि मिलौंगी तुम्हैं बलि क्षेम सों आजु क्षमा करौ लालन
॥६३॥

सौरभ मैं लोलन स्वरूप मैं श्रमित करि
सोभा सरसाय दृग जोरि लेति काहू सों ।

कहत ब्रजेश मैन बाला मैनका सी बनि
मान कै मरोर मुख मोरि लेति काहू सों ।।
छैलन दिखाय छटा छल बल ठानि घने
छन मैं अनंत धन छोरि लेत काहू सों ।
केलि समै सत लेति काहू सौं सहस्र लेति
लाख लेति काहू सों करोरि लेत काहू सों ।।६४।।

दै धन धाम बनायो धनी जो अनेक धनीन को धीर धरावत ।
हौं धनि हौं धनि सोई धनी की धनी वह मेरो गरे जो लगावत ।।
मैं सधनी सधनी सब भाँति ब्रजेश इतै मधनी को कहावत ।
लावत केते धनी मुक्ता मनी और धनी धनी मोहि न भावत ।।६५।।

मानस वियोग दुख भूले से बचन हंस
लोचन सरोज फूले सुषमा नदन मैं ।
कहत ब्रजेश मंदहास कुशमित कास
परम प्रकास कुंद कलिका रदन मैं ।।
आनन अमंद चंद चितओ चकोर बनि
चोरा चोरी चलि कै निकुंज कै सदन मैं ।
मदन गोपाल मन जामा में रहेगो नाहिं
शरद की सामा लखि वामा के वदन मैं ।।६६।।

जहर भरी सो अरी जौ हरी नजर खरी
जुलफैं जुलुम जादू जाय मति जोहनै ।
बरबस बँधै नैन मारू मानवैन कैधों
मंद मुसकानि मंत्र मूठि सी विमोहनै ।।
खोरिन में खेलत ब्रजेश मिलि गोरिन मैं
छैल छरकीलो ब्रजछोरिन के छोहनै
हौं तो लखि आई आजु माँझ को दिखौहौं तोहि
राम की दुहाई माई मोहन सो मोहनै ।।६७।।

औसर पाय बुलाय ब्रजेश मिलाइहौं मैं न इतो अकुलाइए ।
है वृषभान महीप कुमारि मुरारि उपाय मरू करि पाइए ।।
आजु हिलाउ मिलाउ तुम्हैं परी लाल कछू उर धीरज लाइए ।
चंद की चाँदनी के हूँ मिटै मुखचंद की चाँदनी कैसे मिटाइए ।।६८।।

चलो बन मैं वलि व्याकुल बाल बिना सुधि पीर मैं पागि न जाय ।
लतानि के गेह में दूबरी देह विदेह की दाहनि दागि न जाय ।।
ब्रजेश जहाँ तहाँ ज्वालामुखी जनु ज्वाल महा जुरि जागि न जाय ।
वियोग की आगि तैं दीह दवागि सी आगि निकुंज मैं लागि न जाय ।।६९।।

आधे दिन ही तैं श्याम रट हौ राधे राधे
अब तो वियोग बाधे सिगरै जुदै भए ।
कहत ब्रजेश फूले कैरव कदंब कुंज
कुंज कुल त्यागि अलि पुंज प्रमुदै भए ।।
दिनमनि हीन दिन तपनि विहीन वन
देखत ही द्वैषिन के वृंद विमुदै भए ।
ठौर ही मैं इंदुकला कलित अमित चंद
राहु कुज केतु शुक्र साथ ही उदै भए ।।७०।।

बड़े बडे रूप कहतीं जे तिनहीं को आजु
आपने अनूप रूप रासिन भोराई मैं ।
कहत ब्रजेश बड़ी बेर लगि फेरि तिन्हैं
आनन तें घूँघट उघारि उरझाई मैं ।।
विविध विलासन के वलित विहँसि मंद
विज्जु लौं विमल हाँस फाँसनि फँसाई मैं ।
बडे-बडे नैन सुनि बैन ब्रजनारिन के
बडे बडे नैननि निहारि आई माई मैं ।।७१।।

वास जरी के सजाय ब्रजेश अवास सुवास सुवासती केती ।
भूषन अंग शृंगारती आपहि और शृंगारन की विधि जेती ।।
मो कर मैं कजरावटी दै कर जोरि निहोरि हहा करि लेती ।
ये सखियान मैं कोऊ सखी अँखियान मैं मेरे न अंजन देती ।।७२।।

आवत केते प्रवीन नवीन न बीन ब्रजेश बजावन देत हैं ।
त्यागत ऊख की माधुरता न पियूषहु के गुण गावन देत हैं ।।
चाल मरालन की न रुचै इत व्यालन हू को न आवन देत हैं ।
प्रीतम काहे कुरंगन को मद अंगन में न लगावन देत हैं ।।७३।

भानु को भास ब्रजेश बिलोकत सासु के सामुहे बोलि न जात
व्यंग्य भरी सुनि बानि ननंद की काको अरी उर छालि न जात
ऑगन मैं गुरु लोगन के डर केलि के भौन तैं डोलि न जात
का कहिए ब्रजराज के काज को लाज सों घूँघट खोलि न जात है

बृन्दाबन बेचन दही मैं जब जाउँ बीर
मेरो सुनि नाउँ नेहयुत नियरात हैं ।
त्यागि देत बेनु बनमाल कहूँ धेनु कान्ह
दान मिसि दौरि देखिबे को ललचात हैं ।।
कहत ब्रजेश अंग सौरभ सघन केश
बार बार बदन सराहि सकुचात हैं ।
मेरी ओर हेरि हेरि भौंर बनि जात हैं
सुमोर बनि जात हैं चकोर बनि जात हैं ।।७५

चौचँद चारहु ओर चलै न चवाइन को डर लावत काहे ।
है ब्रज गाउँ मैं ठाउँ घनै पै ब्रजेश नहीं मन भावत काहे ।।
घैरु करैं घर की घनश्याम घरी घरी मैं घर आवत काहे ।
वै मुरलीधर नाम हमारो भला मुरली मैं बजावत काहे ।।७६।।

लेरुवान लै लालजी आए उतै हौं कहा ते गई गुनहारी भई ।
लखि मोहि विमोहित से ह्वै गए खरिका मैं खरी खुनहारी भई ।।
कहिए कहा नैन के दोष ब्रजेश अचानक जो हुनिहारी भई ।
सहजै हँसि हेरिबे तैं सजनी येहि टोल में मैं टुनहारी भई ।।७७।।

प्रीतम आए प्रदीपक प्रेम के दीपक जोति जगावन दे री ।
केलि की राति मैं कैरवी सी बनि भैरवी सी मनभावन दे री ।।
आपने अंगन के गुण रूप ब्रजेश बसंत में गावन दे री ।
राजश्री राज सभाग को आजु सुनाय श्रीराग रिझावन दे री ।।

बलि आपहि गूँथत बेनी सदा करि सूरसुता सरि सोतिन की ।
मेहँदी रचै प्रीतम ही सुनि कै दुति दीन सी रूप उदोतिन की ।।
सब अंग सँवारत वारत आपु ब्रजेश घनी मणिजोतिन की ।
पहिनावत आप हि लाय कै लाल जी माल बडे-बड़े मोतिन की ।।७९।।

खेत हरे भरे साँझ समै लखि आतप के गुन दूखत नाहीं ।
नैन औ प्रान जरैं हमरे पिय शीतलता कबौं भूषत नाहीं ।।
हाल ही के बए की गए सींचि ब्रजेश अजौं लगि रूखत नाहीं ।
और सबै उजरे वन शैल सखी तुम्हरे सन सूखत नाहीं ।।८०।।

अनुमानति हौं श्रमपुंजनि पेखि निकुंजनि मैं झकझोरी भई ।
बस कौन है खेत जो बारि ही खाय ब्रजेश बृथा मति भोरी भई ।।
छल होत सदा बिसवास ही मैं बिसमैं तऊ एक न थोरी भई ।
चकवाकिनी लूटो चकोरनी को शशी चोरिनी के गृह चोरी भई ।।८१।।

कौन भाँति बेसरि की बनक बिगारि आई
केसरि कपोलन की कैसे झारि आई तू ।
कहत ब्रजेश कौन काम को पठाई तौन
काम तजि काम को गरब गारि आई तू ।।
स्वेदकन सूखे रूखे मुख सो प्रमानियत
जानियत आपै तन मन वारि आई तू ।
लाल सों न लाई गुनवारी माल मोतिन की
माल बिना गुन की गरे मैं धारि आई तू ।।८२।।

प्रभात पयान को हेतु विचारि अचेतु सी है तन ताय न जाय ।
लगो अबही मुख सूखन लाल नए दुख मैं दुबराय न जाय ।।
दवागि की झारनि ज्यौं लतिका विरहागि की झारनि झाय न जाय ।
ब्रजेश नई दुलही के हिये उलही रति बेलि झुराय न जाय ।।८३।।

आनंद सों वट पूजन के हित बालन की जुरि आई समाज है ।
भेद न खोलती तू तो ब्रजेश न बोलती डोलती होती नराज है ।।

भोजन भाजन भूषन भौन न भावत भूलो सबै गृहकाज है
तोहिं कुसाइत कौन भई सुनि कै बरसाइत को दिन आज है

अबीर की वंदन तीर मैं विंदु सुचीर मैं पीत प्रभा सुखदानि
ब्रजेश विकुंचित केशन मैं कचनार औ किंशुक की कलिकानि ।।
विभातहि आजु नई छविसालि गई पिय सों मिलिबे पिकबानि ।
गरे करि कंज की माल विशाल रसाल की मंजुल मंजरी पानि ।।८

सॉझ ही तैं दंपति अनंग के उमंगयुत
अंग श्रम स्वेद रति रंग अवगाहे तैं ।
अर्धयामिनी लौं करि संतत अनंग सुख
कंत कछु कह्यो जानि औसर उमाहे तैं ।।
बाढ्यौ शोच छन मैं ब्रजेश ताके मोचन की
लागी विधि शोचन बखानति हौं जाहे तैं ।
वेश लिख्यो राहु को हिमालय को देश लिख्यो
रोश लिख्यौ सुंदरि महेश लिख्यौ काहे तैं

जात विदेश परोसिन को पिय बात सुनी जब तैं यह आली
जोवत ही तब तैं मग मीत की रोवत ही अखियाँ भई लाली ।।
और सयान बन्यो न ब्रजेश पयान समै उठि आप उताली ।
रोकिबे हेतु गली छली छैल की गोप लली लै चली घट खाली ।।८

आजु तौ मेरे सबै निधि पास न जानिए का विधि काल्हि सुनावै ।
काज ब्रजेश नहीं अबै साज को तू पटहारिनि को समुझावै ।।
देखत ही दु:ख होयगी वीर सोनारिन मेरे न तीर में आवै ।
जाय जवारी कों बरजै कोऊ जोतिमयी न जवाहिर लावै ।।८

बालम के बिछुरे की ब्रजेश बधून में वैठी बिथा बिसराए ।
लाजनि तै दुलही वा दुकूल में देह की दीन दशानि दुराए ।
ता समै श्याम को नाम कहूँ ते सु काहू सखी सखियानि सुनाए ।
ऑसुन के उमडे बडे बूँद बडे बड़े नैननि मैं भरि आए ।।८९

जागि परी सुनि बानि सखी की ब्रजेश महा विरहागि मैं डाढी।
आय गई पिय की पतिया, छतिया सियराय गई छन गाढ़ी ।।
लाज सों क्षेम न बूझि सकै रुचि बूझिबे की उर मैं अति बाढी।
सुंदरि सासु के सामुहे ऑसु के वारि विमोचित शोचति ठाढ़ी ।।१०।।

नाम न लेति गणेश को भूलि दिनेश उदै लखि दूरि दुराति है।
नेह नहीं नखतेश सो नेकु खगेश के चित्रहु सों अनखाति है ।।
भेद ब्रजेश न जानि परै तिय बानि भई कछु औरई भॉति है ।
त्यागि रमेश को मंदिर सामुहे काहे महेश को पूजन जाति है ।।११।।

बोलती न डोलती न खोलती विलोल दृग
ताप में अमोलती अधिक तन त्वै रही ।
ज्वालामुखी ज्वाल की ब्रजेश थिर बिज्जुमाल
स्वर्णवल्लिका की बड़वागि मैं सम्वै रही ।।
पत्रिका प्रचारनी कै कर विष पत्रिका सी
प्रानपति पत्रिका अनागम की ज्वै रही ।
नृत्त पूतरी सी पिय नेत्र पूतरी सी जो
विचित्र पूतरी सी चित्र पूतरी सी ह्वै रही ।।१२।।

औषधि बारे अनेक ब्रजेश पै बूझे बिना केहि भॉति पतीजिए।
वीर बताउ सवेरि तुम्हीं यह पीर महा कब लौं सहि लीजिए ।।
ताप उपाधि बढ़ी है न जानिए ब्याधि कहा दिन ही दिन छीजिए।
वैद हमारो विदेश में है बलि वेदन कासों निवेदन कीजिए ।।१३।।

वीर विदेश तें आए न लालन होंहिगे बालन मैं अनुरागत ।
औधि की आस मैं राखिए देह ब्रजेश तऊ दुख नेह सों दागत ।।
लाल लगाय लगाय घने गहने रहे देत जे प्रेम मैं पागत ।
वै तन भूषन भूषन के बिन भूषन दूषन के सम लागत ।।१४।।

मेरि हू बाईं भुजा फरकै धरकै उर मानहु मोद मवासु के ।
मोतन हेरि हँसै हरषैं सब दासिका दास परोस के पासु के ।।

धावन आयो कहा ते ब्रजश सुनायो सदेश महासुख रासु के
कागद काको ननंद पढ़्यौ सुनि काहे अनंद बढ़्यो सखि सासु के

क्षेमकरी सदा क्षेमकरी सही क्षेमकरी जु पै बोल सुनायो ।
ता पर लाय कै तैहूँ सँदेश ब्रजेश हिए तैं अँदेश मिटायो ॥
और हू भाग की बात अनंद सो भोर ही काग ननंद उडायो ।
होयगो जो मनभायो हमारो इनाम तौ पाइहै तू मन भायो ॥९

धावन को आवन सिधावन वियोग दुःख
धामन बधावन के ध्वनि सो भरति है ।
कहत ब्रजेश आजु अंगना उमंगन मैं
अंगन मैं आनंद की आभा उघरति है ॥
देवन समेत गुरुदेवन के लागि पग
हेतु दछिना के पट भूषन धरति है ।
प्रानपति आगम की विरह विघाती पाय
पाती रति राती छाती शीतल करति है ॥९७

विटपान के बीच वितान घने उरझाय लतान अतूली फिरै ।
मधुभार प्रसून के भार ब्रजेश सुगंध के भारनि झूली फिरै ॥
पति ऐहै विदेश तैं स्वामिनी को अनुगामिनी वै अनुकूली फिरै ।
छन ही छन भूली फिरै छवि मैं मन ही मन मालिनी फूली फिरै ॥९८।

सुख की कढ़ी मेरे कछू मुख ते सुख सीमा बढ़ी सँग वारिन
लखि मोहि ब्रजेश प्रसन्नमयी प्रभा और भई पुरनारिन की ॥
गुन रेसमी केते जरी के जमा किये पीर गई पटहारिनि की ।
सुनि कै पिय आइबे की पतिया छतिया सियरानी सोनारिन की

परदेश तैं आजु ब्रजेश विभातहि आय गए करि औधि की पू
सही साँझही सेज सजायो सखी समुझायो सलोनी सँवारि कै
मति कौन करे ढिग जाइबे की रति भौन के द्वार मैं ठाढ़ी वि
उलही उर मैं रति वेलि तऊ दुलही भई शोच सकोच की मूरति

रस-रसांग-निर्णय

आठो याम जागि बिरहागि में लहकि बाल
दहकि दवागि लौं उसासनि भरति सी ।
कहत ब्रजेश सोच सोच के सँयोग सुख
व्याकुल वियोग सर बूड़ति तरति सी ।।
आगम विचारि कबौं उर मैं धरति धीर
वीर बिन धीर पुनि पीर मैं परति सी ।
छामोदरी छोहति सी छवि सों विछोहति सी
जोहत तिहारी मग मोहति मरति सी ।।१।।

अंग पसीजत से पुलकैं चकचौंधित आँसुन सौं चकि जाति है ।
रोम उठैं बदलै दुति देह की जोन्ह सी जोति लखे जकि जाति है ।।
बोलत बैन भरे थहराय ब्रजेश विमोहित ह्वै थकि जाति है ।
गोकुल मैं कबौं गैल मैं शैल मैं छैल की देखि छटा छकि जाति है ।।२।।

औंचक ही आई दधि लै करि कहाँ ते ग्वालि
काल्हि आइबे की सौंह करि कै चली गई ।
कहत ब्रजेश तब तैं करि अतन ताप
छन में विरह बीज बै करि चली गई ।।

नैन की मरोरनि उदै करि मरोर उर
जानै कौन और दुख दै करि चली गई ।
हीतल हितै करि वितै करि विनोद अवै
मोहिं दुचिते करि चितै करि चली गई ।।३।।

मांस को पिंड जमे नख बार विचार किये पै सबै सुख भज्जा ।
श्रोणित औ चरबी सो भरी जकरी नसैं तापे कुरूप कुसज्जा ।।
ऐसी महा दुरगंधित देह सों त्यागु सनेह ब्रजेश निलज्जा ।
ऊपर चाम चमाचम चीकनी अंतर मैं मल मूत्र औ मज्जा ।।४।।

सेज मैं जाति सकाति प्रिया समुझाए सखी के कछू रुचि बाढी
पाय कै नाह निशा भरि आजु निशा भरि केलि करी अति गाढ़,
ऑगन मैं लखि भानु को भास उदास भई मुख घूँघट काढी ।
मौन ह्वै नैन ते नीर विमोचित केलि के भौन में सोचति ठाड़ी ।।

जो जग जीवन जीवन हेतु सजीवन जीवन देत मॅवारि के ।
तौ बिन जीवन होत हौं मैं व्रत जीवन जीवन की जो विचारि के
जाय ब्रजेश कहूॅ बरसो सरसो घने बान से बूॅदनि डारि के ।
दाहक दूने दॅवारि तैं होत क्यौं बैरी बलाहक वाहक वारि के ।।६

जूझे मेघनाद कुंभकरन अकंपनादि
नगर निरास भो त्रिकूट गिरि शृंग को ।
कहत ब्रजेश तब रथ मैं अकेलो चढ़ि
आयो युद्ध पथ मैं सकात मन जंग को ।।
संकट मैं प्राण तन मानहु अप्राण भयो
कॉप्यो हृदै सोचि बान हरि के निखंग को ।
देखत ही राम की भयावन भृकुटि भंग
रावन को भंग भो उमाह रन रंग को ।।७।।

धर्म करि दौन बैठे भीषम करण द्रोण
पांडव हू मौन तो रहोई कौन जग मैं ।

खैचत दुशासन दुकूल नृपशासन तै
द्रोपदी विलपि मन राखो कृश्न पग मैं ।।
नाथ रुक्मिनी के यदुनाथ सुनि दीन बानि
द्रवि उठो उर दीन बंधुता उमग मैं ।
द्रुपद सुता की लाज काज दौरे द्वारिका तैं
पट कहूँ मुरली मुकुट कहूँ मग मैं ।।८।।

बागत बन बन बावरी बनि बनि ब्यथित बिहाल ।
बिलपति बकति बिसूरि छबि बनमाली बिन बाल ।।९।।

मन होत विरागी कबौं छन मैं अनुरागी कबौं अपने को गनै ।
सुख भोग सँयोग को चाहै कबौं छन ही मैं वियोग की ताप तनैं
लहरें उठैं ऐसी अनेक ब्रजेश नहीं ठहरैं उर माहि छनैं ।
कबौ साह बनैं कबौं चोर बनैं कबौं राव बनैं कबौं रंक बनै ।।१०।।

काम कला के कुतूहल मैं भुज मेलि करैं दोउ केलि नितै नितै ।
रूप के रासि ब्रजेश दोउ विहरैं रस रास मैं राति बितै बितै ।।
दोउ बसैं उर दोउन को हुलसैं विलसैं हँसै दोउ हितै हितै ।
दोउ दुहूँन के चाह भरे मुख चूमत चारुता चारु चितै चितै ।।११।।

पट घूँघट को करि ओट कबौं पिय के दृग सों दृग जोरै लगी ।
बतरानि सों औ मुसकानि सों मंजु ब्रजेश बिनोद बिथोरै लगी ।।
दिन चारि ही तैं वह चंदमुखी कछु केलि कथानि की ओरै लगी
गति मैं मति मैं कुल कीरति मैं रति मैं पति को चित चोरै लगी ।।१२

आगम तैं रिषिराज के आज ही राज समाज के शीस नए कछु ।
तेज स्वभाव प्रभाव बिचारि बिदेह बिषाद के बीज बए कछु ।।
देखत ही शिव को धनुभंग उमंग मुनीश हिये तैं गए कछु ।
श्री भृगुनंद के बैन सुने रघुनंद के नैन सरोष भए कछु ।।१३।।

देशन देशन के भुवनेश ब्रजेश बृथा अभिमान रहे बकि ।
तौन समै मुनि नाथ निदेश तैं श्री रघुनाथ पिनाक रहे तकि ।।

भंग कियो छन मैं शिव को धनु लोग कछू बिसमै में रहे जकि।
नैन रहे थकि देखत रूप बखानत बीरता बैन रहे थकि ॥१४॥

काम प्रद राम नाम रसना रटनि लागी
पागी अभिराम राम रस मैं अदब तैं।
कहत ब्रजेश जागी योग की जुगुति जी मैं
सानुकूल सुमति सभागी भई तब तैं॥
देह गेह दौलत सौं बागी से रहत प्रान
मान अपमान मैं अदागी भाव सब तैं।
भागी विषै वासना उपासनानुरागी भयो
रागी मन रंचक विरागी भयो जब तैं ॥१५॥

न काम ही के रसना रहे कोश न तो कछु राम ही के गुन गाए।
न स्वाद मिलो अधरा मधु को न ब्रजेश कथा को सुधा मधु
न शाला न सेज न बाला सजाए न तो मृगछाला न छाला बिछाए।
बिताए वृथा दिन सोग ही मैं न सँयोग जगाए न योग जगाए

ना परमारथ को कछु सोच सदा मन स्वारथ ही मैं लपेटा।
देश विदेश मैं पेट के हेतु फिरे धरि शीस में पाप के पेटा॥
अंत समै सुत नारि बिसारि कै चारि दिना मैं चले कसि फेटा।
कौन के बंधु बसुंधरा कौन की कौन के बाप औ कौन के बेटा ॥१७

जो अनुराग हमारो ब्रजेश तो भाग भलाई कबौं जगि जायगी।
प्रेम भरी मम बातनि मैं कबहुँ वह प्रान प्रिया पगि जायगी।
धीर धरै रहौ पीर बिसारि वियोग की भीर सबै भगि जायगी।
फेरि हरे हरे कुंज मै मंजु हरे हरे आनि गरे लगि जायगी ॥१८

मोहन रूप की आज ब्रजेश वै मोहन कौन सी मोहिनी डारी
नेह मैं मोहि रही तब तैं सुधि गेह की देह दही की बिसारी
भोर तैं भाँवरी देत फिरै भई साँवरी सूरति मैं मतवारी।
आपु बिकाय गई मन बेचि नई यह गोरस बेचन हारी ॥१९॥

बेलसँगे बघंबर माहि विहाय कै अंबर कंबर व्याधि मैं ।
रहैं अंग विभूति के भूषन वारिहैं भूषन भूति उपाधि मैं ॥
गेहैं योगिन के संग योग विरागिहैं जीवन के सुख साधि मैं ।
मद मोह बिना जपि सोहं करैंगे शिवोहं शिवोहं समाधि मैं ॥२०॥

जाल मैं फँसी हैं कैधों मृगन की सावकी द्वै
पींजरे मैं कैधौं खंजरीटन की सखियाँ ।
कैधों विकसौहीं कंज कलिका सिवार मैं
ब्रजेश झिलमिलैं रूपसागर मैं झखियाँ ॥
शर्द घन मध्य चन्द्रमा मैं द्वै चकोरनी हैं
जागी भोर कोर करैं कुंत सी कनखियाँ ।
अधखुले द्वार तैं लखौ हो अधखुले लाल
अधखुले घूँघट मैं अधखुली अँखियाँ ॥२१॥

भोर ही तै नैन मुख पट मैं छपाय राख्यौ
पट मैं छपाय राख्यौ सुषमा शसी की है ।
हारे मनु हारि करि केती मनुहारि करि
ठाडे मनु हारि दशा ऐसी हरि पी की है ॥
कहत ब्रजेश नहीं बोलती न डोलती न
खोलती पलक होती पलक मैं फीकी है ।
यद्यपि अनूतरी पै पूतरी न राखै मूँदि
तोसौं तौ परखान पूतरी की आँख नीकी है ॥२२॥

बाजत बधाए पुरवासी सुखकंद भए
छंद भए दूर वृषभान वृषभानी के ।
कहत ब्रजेश लोक लोकप अनंद भए
मंद भए मान क्रूर कंस राजधानी के ॥
द्वार द्वार दधि के चहल मग बंद भए
छन्द भए सरस गनेश शेष बानी के ।
वृन्दाबन चंद भए ब्रज मैं अनंद भए
आज नंद नंद भए नंद नंदरानी के ॥२३॥

ृजी लिख भेजिये पै न मिलै मरजी न कबौं रुख प
को डर तापै ब्रजेश कहौ तब कापै सँदेश पठाइए ।
की चरचा न कहूँ न बुलाइबे की बतियाँ ही सुनाइए
कैसे मिलैं हम आय उपाय कछू अब आपै बताइए

मंडित प्रस्वेद मुख मुद्रित पलक पीक
पौढ़ी प्रिया निद्रित अनुक्त मुक्ति लूटी सी
कांचन द्रुमी की कलपद्रुमी ब्रजेश कैधों
विद्रुमी विमल कांति कुंदन की कूटी सी ।
शुद्ध सुघटी की उघटी है निघटी की रति
प्रज्जटी नटी की बिज्जुटी की परी टूटी सी
काम की कुटी की लकुटी की वृकुटी की माल
भाल भृकुटी की त्रिकुटी की जोति जूटी स

जानै कौन जादू जंत्र कै गई निकुंजन मैं
लै गई लुभाय मन बेटी वृषभानु की ।
कहत ब्रजेश तबही तैं बिन धीर श्याम
सहत शरीर पीर अतन कृपान की ॥
डोलत न चैन सौं न खोलत पलक नैन
बोलत न बैन को चलावे खान पान की ।
संग के सखान की न ब्रज के वृषान की
पखान की न सुधि भए मूरति पखान की

न आजु निकुंजन की मग आनि खरे तौ खरे रहिगे ।
ेन कदंब की डारन मैं करकंज धरे तो धरे रहिगे ॥
आवत लालची नैन ब्रजेश लरे जो लरे तो लरे रहिगे
. तजि आनि सबै दुख भानि भुजानि भरे तो भरे रहि

आनंद उमंग मैं रमति प्रिय संग प्रिया
रसना बलित लंक पायल पदन मैं ।
कहत ब्रजेश विपरीत रति रंग रचि
है रहे श्रमित अंग मोहित मदन मैं ॥

याम एक बाकी रही जोन्ह की त्रिजाम तब
श्यामा श्याम सोए मिलि सुन्दर सदन मैं।
पोखराज पदिक सुबर्न की रही न प्रभा
पन्ना को बरन भयो प्यारी के बदन मैं ॥२८॥

अंवर जरीन के परीन के पहिरि अंग
भूषन मनीन के कनीनके सुधारती।
कहत ब्रजेश चित्रसारिका सुगंधित कै
सारिका समेत शुक सामुहे तैं टारती॥
पंखा पौन पान परिचारिकान प्रेरित कै
प्रान पति हेतु प्रभा पूरन पसारती।
साँझ ही तैं सुमन सँयोगी कै सरोज नैनी
सेज मैं सरोजन कै सुमन सँवारती ॥२९॥

सेज संदली पै सजे दंपति समाज सोभा
आज रति राज के ब्रजेश हौंस हाटी मैं।
साँझ ही तै विविध विलास के विरचि अंग
ह्वै रहे श्रमित रतिरंग रस राटी मैं॥
याम निशि वाकी श्याम अंग सौं लपटि श्यामा
सरम समोई सोई सुमन सजाटी मैं।
नीलम कपाटी मैं पदिक लर आला कैधौं
पोखराज माला मंजु मारकत पाटी मैं ॥३०॥

घाँघरी सामरी ग्वालिनि के कटि कामरी गोरे गुवाल कै भावै
सामरी ग्वालिन के शिर ओढनी गोरे गुवाल के पाग सुहावै॥
वानिक वासन के बदले की ब्रजेश विलोकति ही बनि आवै।
सामरी ग्वालिनि गावै हरे हरे बाँसुरी गोरो गुवाल बजावै ॥३१॥

वृंदावन वीथिन ब्रजेश ब्रज वल्लभ को
वस कै विनोद के वलित बतराति जाति।
मोरि मोरि मुख भ्रू मरोरि दृग जोरि जोरि
नासिका सिकोरि कोरि विधि इतराति जाति॥

ज़ी लिख भेजिये पै न मिलै मरजी न कबौं रुख पा
को डर तापै ब्रजेश कहौ तब कापै सँदेश पठाइए ॥
की चरचा न कहूँ न बुलाइबे की बतियाँ ही सुनाइए
कैसे मिलैं हम आय उपाय कछू अब आपै बताइए

मंडित प्रस्वेद मुख मुद्रित पलक पीक
पौढ़ी प्रिया निद्रित अनुक्त मुक्ति लूटी सी ।
कांचन द्रुमी की कलपद्रुमी ब्रजेश कैधों
विद्रुमी विमल कांति कुंदन की कूटी सी ।
शुद्ध सुघटी की उघटी है निघटी की रति
प्रज्जटी नटी की बिज्जुटी की परी टूटी सी
काम की कुटी की लकुटी की वृकुटी की माल
भाल भृकुटी की त्रिकुटी की जोति जूटी स

जानै कौन जादू जंत्र कै गई निकुंजन मैं
लै गई लुभाय मन बेटी वृषभानु की ।
कहत ब्रजेश तबही तैं बिन धीर श्याम
सहत शरीर पीर अतन कृपान की ॥
डोलत न चैन सौं न खोलत पलक नैन
बोलत न बैन को चलावे खान पान की ।
संग के सखान की न ब्रज के वृषान की
पखान की न सुधि भए मूरति पखान की

न आजु निकुंजन की मग आनि खरे तौ खरे रहिगे ।
ान कदंब की डारन मैं करकंज धरे तो धरे रहिगे ॥
आवत लालची नैन ब्रजेश लरे जो लरे तो लरे रहिगे
। तजि आनि सबै दुख भानि भुजानि भरे तो भरे रहि

आनंद उमंग मैं रमति प्रिय संग प्रिया
रसना बलित लंक पायल पदन मैं ।
कहत ब्रजेश विपरीत रति रंग रचि
है रहे श्रमित अंग मोहित मदन मैं ॥

याम एक बाकी रही जोन्ह की त्रिजाम तब
श्यामा श्याम सोए मिलि सुन्दर सदन मैं ।
पोखराज पदिक सुबर्न की रही न प्रभा
पन्ना को बरन भयो प्यारी के बदन मैं ॥२८॥

अंबर जरीन के परीन के पहिरि अंग
भूषन मनीन के कनीनके सुधारती ।
कहत ब्रजेश चित्रसारिका सुगंधित कै
सारिका समेत शुक सामुहे तैं टारती ॥
पंखा पौन पान परिचारिकान प्रेरित कै
प्रान पति हेतु प्रभा पूरन पसारती ।
साँझ ही तैं सुमन सँयोगी कै सरोज नैनी
सेज मैं सरोजन कै सुमन सँवारती ॥२९॥

सेज संदली पै सजे दंपति समाज सोभा
आज रति राज के ब्रजेश हौंस हाटी मैं ।
साँझ ही तै विविध विलास के विरचि अंग
ह्वै रहे श्रमित रतिरंग रस राटी मैं ॥
याम निशि वाकी श्याम अंग सौं लपटि श्यामा
सरम समोई सोई सुमन सजाटी मैं ।
नीलम कपाटी मैं पदिक लर आला कैधौं
पोखराज माला मंजु मारकत पाटी मैं ॥३०॥

सामरी ग्वालिनि के कटि कामरी गोरे गुवाल कै भावै ।
ग्वालिन के शिर ओढ़नी गोरे गुवाल के पाग सुहावै ॥
वासन के बदले की ब्रजेश विलोकति ही बनि आवै ।
ग्वालिनि गावै हरे हरे बाँसुरी गोरो गुवाल बजावै ॥३१॥

वृंदावन वीथिन ब्रजेश ब्रज वल्लभ को
वस कै विनोद के वलित बतराति जाति ।
मोरि मोरि मुख भ्रू मरोरि दृग जोरि जोरि
नासिका सिकोरि कोरि विधि इतराति जाति ॥

भावन के संग मैं सुभावन के संग मन
भावन के संग मैं मनोज मदमाति जाति ।
हरे हरे हार मैं हरति ही हरिन नैनी
हरे हरे हेरति हँसति हरखाति जाति ॥३२॥

सखियाँ नाहिं साथ सयानी कोऊ मन मौज मनोज उरायन मैं
अधराति अँधेरी न सूझि परै रही माति महा चित चायन मैं ॥
बलि को रिझवार है रीझि है जो यह तेरे श्रृंगार सुभायन मैं ।
चली कौन पैं कुण्डल को करि कंकन बाँधि कै किंकिनी पायन में

मंजन कराय पहिराय पट अंजन दै
कंज खंज मीन मृग वारत ही रहतीं ।
कहत ब्रजेश करि कंठश्री कलित कंठ
छवि उपकंठ मैं निहारत ही रहतीं ॥
माल मुकतानि की सुधार सुखदेनी कबौं
बेनी गूँथि गूँथि बलिहारत ही रहतीं ।
ब्रज सरदार श्यामा श्याम सुख राधिका को
राधिका को सखियाँ सँवारत ही रहतीं ॥३४॥

कौतुक कान्ह कियो धौं कहा परस्यो निज हाथन सौं निज ही
त्यौं मनभावती हू दृग ह्वै समुझायो कछू मन भावते पी को ॥
फूल जपा को दिखायो ब्रजेश महाछवि मूल जुड़ावन जी को
बाल बिचारि गोपाल की बात दुरायो लिलार तैं लाल को टीको

क्यौं न रहो उनही के समीप मैं प्रेम के दीप मैं जो चहो जूझन
जानै ब्रजेश जू वेई वियोगिनी है विरहागि मैं केती तलूझन ॥
वेई नवेलिन की सुनो आह चहौ विषबेलिन मैं जो अरूझन ।
बूझो वही ब्रज की बनितान सौं जो बिछुरे की बिथा चहौ बूझन

भागन सौं कहूँ देखि परे तो अभागिनी लाजन ही मैं सनी रहीं ।
व्याकुल सी बिन देखे ब्रजेश हमेश वियोग विथा की धनी रहीं ॥

स्वाति स्वरूप के आसरे में पपिहा सी पियास के ताप तनी रहीं
वै निरमोहिनी आँखिन सों मिलि ये अँखियाँ दुखिया ही बनी रहीं ।।३

जो परदेश में होहिं ब्रजेश तौ पाती सँदेश पठाय बुलाइए ।
पासहि मैं रहि सीठि कए मति तौ पुनि कापै बसीठि लगाइये ।।
रोवत ही रहिए सहिए सबै जोवत ही मग राति बिताइये ।आपने ही
बिराने भए तब कौन उपाय सौं प्रीतमैं पाइये ।।३८।।

रहियौ बैठि आसन कहाँ लौं औधि आसन मैं
आसुन बितीतैं दिन आँसुन अन्हाए री ।
कहत ब्रजेश कल पल ना परति हायँ
पल ना परति कैहूँ पलना झुलाए री ।।
वारि जात मैन तन काहू पै न वारि जात
होत कहा वारि जात पातन बिछाए री ।
हेरि वनमाली वनमाली मन भाए आली
आए वनमाली वनमाली वै न आए री ।।३९।।

भूषन अंग जराऊ ब्रजेश जरी पट बीजुरी को मद नाखै ।
सूधो सुभाव सुशील कै वैन कछू उलहीं उर मैन की साखैं ।।
प्रानन तैं मन तैं छन एक न भूले स्वरूप किए विधि लाखैं ।
लाँबी लटैं वह पातरी देह सनेह भरी वै बडी बड़ी आँखैं ।।४०।।

ताप मैं ताय रहो तन तीय को ताकी न तीक्षनता हरि जायगी ।
प्रान रहे रुकि औधि की आस मैं ना तो उसास विदा करि जायगी ।।
यौं विरहागि बढ़ी है ब्रजेश बयारि के लागत ही बरि जायगी ।
जाहुगे जो पै नगीच न मोहन मोहनी मीच बिना मरि जायगी ।।४१।।

व्याकुल सी ह्वै रही विमोहित विकानी बाल
बैठी बिलखानी सी न जानी केहि मान मैं ।
कहत ब्रजेश मुरझानी माल मालती सी
मति उरझानी मनो मदन गोपाल मैं ।।

जा छिन तैं माधुरी तू मूरति बखानी बलि
ता छिन तैं सूरति समानी मन प्रान मैं ।
को कहे कहानी भई अकह कहानी दशा
कान्ह के स्वरूप की कहानी सुनि कान मैं ॥

समुझै न सुने न गुनै कछु ज्ञान धुनै शिर सूतरी सी ह्वै गई ।
नहिं बोलती ही नहिं खोलती नैन बिथा अनुभूतरी सी ह्वै गई
मन ही मैं बिचारि ब्रजेश छटा छन ही मैं अनूतरी सी ह्वै गई
सखि श्याम को चित्र विचित्र विचित्रिनी चित्र की पूतरी सी ह्वै गई

श्याम मिले सपने मैं सखी पहिले की समान न भागि परी मैं ।
सौतिन के मुख मैं मसि कै हँसि के उर मैं अनुरागि परी मैं ॥
कौन कथा कहिये कुबिथा की बृथा विरहागि मैं पागि परी मैं ।
लागि परी गरे ज्यौं ही हरे हरे त्यौं ही अभागिनी जागि परी मैं ॥४४॥

आय गए घनश्याम इतै उतै राधिका आई महामुद माति है ।
देखत ही छवि मैं छकि गे दोऊ पंथिन से थकिगे रस राति है
ठाडे ठगे से पगे से ब्रजेश दशा नहिं दोहुन की कहि जाति है ।
प्रेम सौ पीवैं पियूष प्रभा तऊ नैनन की नहिं प्यास बुझाति है ॥४५॥

कुबलै हरन सोभा कुबलै सरन फूले
कुबलै दरन देव मन बेमुदै भयो ।
कहत ब्रजेश गंध वाहक महक चारु
चहक चकोरन को पुंज प्रमुदै भयो ॥
मल्लिकान मोहित मधुव्रत करत गान
मान तजि मान माननीन तैं जुदै भयो ।
चारु चैत चारुता है चारु चौक चंदमुखी
चारु चंद्रिका है चारु चन्द्रमा उदै भयो ॥४६

चन्द्रमा की चारुता सों होत बिन चैन चित
चैत की चिता सी यह चाँदनी चितैहै को

कहत ब्रजेश चलै शीतल समीर तीर
है रहो तुनीर उर पीर तैं रितैहै को ॥
फूले कंज किंशुक अनार कचनार कुंज
गुरज सो गुंज अलि पुंजनि हितैहै को ।
अंत कियो चाहत बियोग बलवंत बीर
कंत बिन बासर बसंत के बितैहे को ॥४७॥

शीतल मंद समीर उतै चलै तीर सी लूक इते दुखवंत है ।
रंग अबीर के नारे उतै बरखै इतै नैन ते नीर अनंत है ॥
बोलत कोकिल कीर उतै पापिहा इतै रोज रटै कित कंत हैं ।
ग्रीषम औ बरखा ब्रज माहिं ब्रजेश बसै मथुरा मैं बसंत है ॥४८॥

सौरभित शीतल समीर भीर भौंरन की
कंज कीर कोकिल समाज को सदन है ।
कहत ब्रजेश अंब बिंब न्यौं मधूक मंजु
कुसुमित कुंज नव साज को सदन है ॥
चंद चारु चंद्रिका वलित चहुं ओर चितै
मंद दुति चंद भयो लाज को सदन है ।
नंद के नँदन एहो मूरति मदन आज
राधे को बदन रितुराज को सदन है ॥४९॥

ताप कर तेज तैं प्रताप कर आतप है
तप इन तापित तृषा मैं मति पागी सी ।
सूखे जात नदी नद रूखे जात घन बन
दूखे जात अंग गई देह दुति दागी सी ॥
कहत ब्रजेश लोक लोहित बिलोकियत
लोग महा व्याकुल चहूँधा लूक लागी सी ।
जेठ की जलाक जागि जगत की दौनि भई
औनि भई दहकि दवागि बड़वागी सी ॥५०॥

चंद होय चारो ओर चाँदनी अमंद होय
मंद होय मारुत चलत द्वार दर मैं ।
गायक प्रवीन होय वाटिका नवीन होय
बीन होय बाजत विनोद की लहर मैं ।।
सौरभित नीर होय अमल उसीर होय
शीर होय समिधि ब्रजेश ग्रीष्म झर मैं ।
पास गंग नाला होय अंग फूल माला होय
बाला होय संग भंग प्याला होय कर मैं ।।५१।

मद भरे मारू सोर मुरवा मचावै लगे
धावै लगे धुरवा धरा लौं धवलिन मैं ।
कहत ब्रजेश अम्बु उमडन लागो फेरि
घुमड़न लागे महा मारुत मलिन मैं ।।
दमकन लागी वही दामिनी दरदहीन
लमकन लागी विरहागि नवलिन मैं ।
मेरे मनभावन सौं सावन सुनावै कौन
आवन पथिक लागे गाँवन गलिन मैं ।।५२।।

भूषन जराऊ जगैं जीगन जमाति जोति
वक पाँति रदन वहाली दरसति है ।
कहत ब्रजेश मोर बेसरि वनक वेश
विहसनि बीजुरी बहार सरसति है ।।
वक धनु भौंहैं सोहैं अलकैं अमल घटा
पानिप छटा की परमाली परसति हैं ।
ब्रज सरदार श्याम सुन्दरी सुजान राधे
बदन तिहारे बरसाति बरसति है ।।५३।।

चंद्रमा चमर नखतावली मसालैं जरी
ढालै परीं पीठिन मैं कुवलै अनंत की ।
गजन के वेश गिरि विटप ब्रजेश बजि
रथन की राजि राजैं सरिता दिगंत की ।।

पल्लव पदाति धनु लतिका सुमन वान
कास की कृपान लै करैगो गति अंत की ।
करद कलीन सों वियोगिनी गरद ह्वै हैं
बे दरद सेना सजी शरद समंत की ॥५४॥

मानस वियोग दुख भूले से वचन हंस
लोचन सरोज फूले सुषमा नदन मैं ।
कहत ब्रजेश मंद हास कुसुमित कास
परम प्रकास कुंद कलिका रदन मैं ॥
आनन अमंद चंद चितओ चकोर बनि
चोरा चोरी चलि कै निकुंज के सदन मैं ।
मदन गोपाल मन जामा मैं रहैगो नहीं
शरद की सामा लखि वामा के वदन मैं ॥५५॥

सेल सम लागत फुलेल तेल अंगन मैं
सूल सो तमूल औ त्रिशूल तूल तंत यह ।
कहत ब्रजेश ज्यौं ज्यौं बाढ़त बधिक शीत
त्यौं त्यौं होत अधिक वियोग बलवंत यह ॥
वासर सिरानो तो सिराति नहीं राति वीर
तापर अराति सी बयारि है अनंत यह ।
शरद के अंत बचो केहु भांति अंत अब
कंत बिन हंत होन चाहत हिमंत यह ॥५६॥

मंजन वलित राजैं कुंद कलिका से रद
अंजन वलित नैन खंजन सरस होत ।
कहत ब्रजेश शुभ्र शीतकर आनन तैं
बरसत शीत मानो हिम की परस होत ॥
दीरघ रजनि केश वासर प्रकाश थोरो
घूँघट खुलै तैं काहू भाँति जो दरस होत ।
कंपत अधर कर कंत को हरिन नैनी
तेरो मुख हेरत हिमंत को हरस होत ॥५७॥

थरथर काँपैं गात आतप की केती बात
शीत को जबाल अग्नि ज्वाला सों न जात है ।
कहत ब्रजेश कहा तेल औ तमूल तूल
तून मखतूल ऊन आला सों न जात है ।।
पाला यह शिशिर को अजब कसाला रूप
बाला बिन बारुनी के प्याला सों न जात है ।
शाला सों न जात है रसाला सों न जात है
मसाला सों न जात है दुशाला सों न जात है ।।५८।।

दहकै अनल तापै महकै कुरंग मद
अगर के धूप करि धूम दीजियत हैं ।
गरम गलीचन पैं नरम दुलीचन पै
अतर उलीचन पै भौन भीजियत हैं ।।
कहत ब्रजेश कहा शीत को कसाला तिन्हैं
शिशिर के पाला को दिवाला कीजियत हैं ।
बैठ चित्रशाला मैं दुशाला सों लपेटि अंग
बाला संग बारुनी के प्याला पीजियत हैं ।।५९।।

घोरे जात रंग भरि हौजन हिलोरे जात
जोरे जात अगर अबीर लै सहल मैं ।
कहत ब्रजेश जंत्र वृंदन मरोरे जात
वेदन बिथोरे जात चंदन चहल मैं ।।
झोरे जात झौरिन सौं अंग झकझोरे जात
दासी दास दौरे जात फाग की टहल मैं ।
घोरे जात चोरे जात बसन निचोरे जात
श्याम आज बोरे जात श्यामा के महल मैं ।।६०।।

चंदन चलत चारु वंदन चलत कहूँ
वृंदन में वीर बरजोरिन की धूम है ।
कहत ब्रजेश कहूँ बाजत मृदंग जात
गहब गुलाल ग्वाल गोरिन की धूम है ।

खेलत खुसी सौं फाग सुन्दर समाज श्याम
राग रस रूप रंग रोरिन की धूम है ।
झोरिन की धूम झकझोरिन की धूम
सखि आज ब्रजखोरिन मैं होरिन की धूम है ।।६१।

व्याहन आयो न जानिये को है सवारी किए अति दूवरे बैल की '
साथ लिये दस बीस खबीस औ शीश मैं मौर भुजंग विषैल की ।।
नाचत नग्न बराती पिशाच्च ब्रजेश हँसै बनिता सब गैल की ।
देखि दिगम्बर दूलह को मुख अंबर दै हँसै पाहुनी शैल की ।।६२।।

जीवन को मूर मम लै गयो अक्रूर कूर
दै गयो विरह दूर कै गयो रमन तैं ।
रोवैं ग्वाल बाल हैं बिहाल बनमाली बिन
ग्वालन की बाल दधि मथती न मन तैं ।।
कहत ब्रजेश धेनु कलपैं निकुंजन मैं
विलपैं विपिन जीव धीरज दमन तैं ।
नंद महाव्याकुल विकल नंद रानी फिरैं
वृन्दावन चंद नंद नंदन गमन तैं ।।६३।।

बैन घननाद के कठोर सुनि लक्षमन
जरि बरि उठे अंग आगि उर आनि आनि ।
भंग करि भौंहनि अभंग अभिमान करि
नैन लाल रंग मैं रहे हैं जनु सानि सानि ।।
कहत ब्रजेश विष व्याल सम फुंकरत
हुंकरत दंतन अधर दल भानि भानि ।
अंध मद देखि दशकंधर को नंद सौहैं
संधनत बान धनु कान लगि तानि तानि ।।६४।।

साथ कपि रिच्छ सेना राजैं रघुनाथ रण
हाथ धनुतीर द्वै तुनीर लागे करकन ।

कहत ब्रजेश जटा मुकुट अमंद शीश
उर मैं अनंद के उमाह लागे थरकन ॥
मंदर समान सौहैं देखि दशकंधर को
तेज तपभान त्रान बंद लागे तरकन ।
सुंडादंड सुंदर उदंड रघुनंदन के
कालदंड ऐसे भुजदंड लागे फरकन ॥६५॥

महादेव समदेव को दानी दया निकेत ।
देत एक फल फूल जे तिन्हैं चारि फल देत ॥६६॥

प्रात ही तैं सेवैं प्रानपति के चरन सीता
प्रान पति प्रान तैं अधिक आदरत नित्य ।
कहत ब्रजेश तैसे शेष धनुबान गहि
दंपति निदेश निज शीश मैं धरत नित्य ॥
शासन पिता के त्यागि त्रिण के समान राज्य
राज रिषि राम राज्य वन की करति नित्य ।
क्षेम के सहित नव नेम के सहित पूजै
प्रेम के सहित प्रभु पादुका भरत नित्य ॥६७।

तेल सों जाहि फुलेल सों पोषत रोषत लागे मरीचिका घाम की ।
प्रेम सों जाहि अँगोछत पौंछत लाय ब्रजेश सुगंध ललाम की ॥
भूषत जामे अनंत विभूषन अंत समै नहिं एक छदाम की ।
चाँदनी ऐसी चमाचम पै यह चाम चमारहु के नहिं काम की ॥६८॥

नंद को छबीलो वह छोरो मुखचंद वारो
चरित अमंद जाके शेष हू सकै न लेखि ।
कहत ब्रजेश काल्हि ही तैं प्रति ग्रामन मैं
चरचा चली है प्रति धामन कहौ मैं रेखि ॥
बात है अचंभव की कहत बनै न सखी
श्रौन सुनि आई एक कौतुक नयो विसेखि ।

कोऊ कह्यौ माटी खायो कान्हर दिखायो मुख
यशुदा चकित भई चौदहों भुवन देखि ॥६९॥

देश कोश दासी दास वनिता विलास घने
वास घने विमल विनोद नव नाद को ।
कहत ब्रजेश तैसे पुत्र अरु पौत्र सुख
प्रजा पुंज परम प्रमोद है प्रवाद को ॥
सत्य के समान पै न इनमें कछुक सत्व
तत्व बिना जगत अलप अहलाद को ।
देखत मैं सुंदर सुमन को सुखद जैसे,
सेमर को सुमन सुगंध को न स्वाद को ॥७०॥

जात मिटि योवन जलूस जेव जोम वारो
जाति मिटि कीरति जो जग में विख्याति है ।
कहत ब्रजेश देह गेह नेह नाते सबै
जात मिटि देश कोश कुल करामाति है ॥
ऐसे बसो बास तैं उदास क्यौं न होत मूढ
जामैं एक छन की न थिरता लखाति है ।
चरचा रहति पीछे चारि दिन चारि ओर
चारि दिन बीते चरचा हू मिटि जाति है ॥७१॥

बीस भुजवारे औ सहसत्र भुजवारे गए
बडे बडे विभौ वारे त्यागि वित्त बल को ।
कहत ब्रजेश विष्णु लोक शिव ब्रह्म लोक
औरौ घने लोक लोप होत है अचल को ॥
तब कौन आशा यह स्वासा छनभंगुर की
तन को तमासा है बतासा मनो जल को ।
दिन को न रात को न भोर को न सॉझ को
भरोसो ना पहर को घरी को एक पल को ॥७२॥

पर द्रोह के कोह के काम के त्यौं ममता मद मोह के डेरे भए
वनिता सुत औ वित हेतु ब्रजेश घने दुख दोष के घेरै भए ॥
जग के सुख भोग मैं लागि अबै लगि ना जप योग के नेरे भए।
दिन चार को चाम के चेरे मए मन मेरे न राम के चेरे भए ॥

वाहन वाजि के वृंद ब्रजेश गयंद खरे के खरे रहि जायँगे ।
पीनस पालकी पालने पाल पलंग परे के परे रहि जायँगे ॥
अंत समै कफ बात सौं ग्रासित बैन गरे के गरे रहि जायँगे ।
भोजन भाजन भूषन भौन भँडार भरे के भरे रहि जायँगे ॥७४।

चौंकत चंद चितै रघुनंदन वृन्दन मैं पुलकैं लखि बालन ।
मंद हँसै विहँसै कवहूँ लखि मातु लुटावैं मणीन की मालन ॥
कौशिला गोद में धारि ब्रजेश करै सविनोद उछंग उछालन ।
लालन को मुख चूम कै घूमि घरीक मैं झूमि झूलावती पालन ॥७५

भारत है पितु भूमि है मातु घने सुत हैं हम प्रेमी हमेश के ।
भारत वासिन के हम बंधु निवासिन के गन बन्धु ब्रजेश के ॥
भारत के हित प्राण लगैं तो प्रदान मैं सोच करैं न कलेश के।
भारत देश हमारो हितू है हृदै सों हितू हम भारत देश के ॥७

आपके प्रताप ही तैं सुत में प्रतापी मम
मारे दुर नादनि जे पाप में निरत निंदु ।
आप के प्रताप तैं प्रबल धनु भंजो राम
आपके प्रताप ही तैं यश परिपूर्ण इंदु ॥
कहत ब्रजेश ऐसे आनंद के ऐन राव
कहि कहि बैन बरसावत सुधा के बिंदु ।
क्षेम के सहित बड़े नेम के सहित पूजैं
प्रेम के सहित विश्वामित्र के पदारबिंदु ॥७७

सब भाँति सखा को सनाथ कियो यदुनाथ सनेही यथारथ के।
अपनो तजि स्वारथ सोच्यो सदा शुभ कारज मित्र के स्वारथ
समुझायो ब्रजेश विमोह बढ़े कहे बैन घने परमारथ के ।
रथ आरथी के सम हाँक्यो हरी रण मैं बनि सारथी पारथ के ॥७८॥

मोहन-चरित्र-माला

जन्म भयौ जौन छन गाँधी गुन मंदिर को
तौन छन छुद्रन को दूर छल छंद भो ।
कहत ब्रजेश हिन्द जन्मे जनेश ऐसे
रहित कलेश देश देश मैं अनंद भो ।।
पादप प्रबल परतंत्रता को छीन भयो
अंकुर स्वतंत्रता को उमगि अमंद भो ।
लंदन में बंद भो स्वछंद सैन सेजन को
तेज अंगरेजन के नेजन को मंद भो ।।१।।

बाल ही पने तैं गाँधी भए हैं प्रभाव शाली
भाव शाली दिव्य दुति देह में दमक दार ।
विमल विशाल भुज विमल विशाल दृग
विमल विशाल भाल तेज सौं तमकदार ।।
कहत ब्रजेश लागो बढ़न प्रताप दाप
गौरव को थाप प्रजागन मैं गमकदार ।

होनहार पादप के होनहार होत अंग
होनहार पत्र होत चीकने चमकदार ।।२।।

कोकनद प्रात के प्रसन्न चित कोक जैसे
शोक बिन लोक परलोक हितकारी हैं ।
वर्धन विनोद के गोवर्धन गिरिंद सम
भार हिन्द ब्रज को गोविंद सम हारी हैं ।।
कहत ब्रजेश जप योग तप देशन में
संयम नियम व्रत येई धर्म जारी हैं ।
गाँधी जी सदैव तैं उजारी है अधर्मिन के
हिंसा पुर जारी हैं अहिंसा के पुजारी हैं ।।३।।

सुंदर सुशोभित अवास मधि मोहन को
वास भयो यद्यपि सुपास जहाँ खाम ना ।
जाय के अदालत वकालत करन लागे
हालत हरन लागे जिनको अराम ना ।।
पावन विजय लागे अरिन अपावन सौं
पावन प्रजान त्यागैं पावन को सामना ।
दासता को दासन की तदपि विनासन की
ब्रिटिस के शासन की नासन की कामना ।।४।।

धर्म कर्म धाम गाँधी राजैं अफरीका मधि
जिनको न फीका मन कारज की ओर है ।
सहज सुभाव त्यौं अनीति को अभाव उर
सबमें समान भाव राखे दृग कोर हैं ।।
कहत ब्रजेश परस्वास्थ हमेश रत
मेघ रूप मोहन हैं देश मन मोर हैं ।
चारों ओर भावन को माचो घन घोर है
[illegible] को सोर है बलस्टरी को जोर है ।।५

यद्यपि वकील रहे आर्ज रूप गाँधी तऊ
बड़े बडे साहस के कार्ज करते रहे ।
करते प्रहार रहे भाषन के नेत्रन को
नहीं अंगरेजन को नेकु डरते रहे ।।
वृंद मजदूरन को कूरन के फंद फँसो
ताको दुख दूरन कै मोद भरते रहे ।
एक हू घरी का वेश धरते रहे न दूजो
देश अफरीका को कलेश हरते रहे ।।६।।

यद्यपि करत अफरीका मैं निवास गाँधी
नित्य प्रति हिन्द भक्ति तदपि अनंत होय ।
कहत ब्रजेश कौन कीजै उपचार जासौं
विमल विचार या हमारो बलवंत होय ।।
मोचत रहत दुख शोचत रहत यही
कौन भाँति देश द्रोह भार बिन तंत होय ।
कैसे दृढ मंत्र होय दूर परतंत्र होय
भारत स्वतंत्र होय ब्रिटिस को अंत होय ।।७।।

भारत में आये गाँधी छाये सोर स्वागत के
बाजत बधाए धाए मति अवदात हैं ।
कहत ब्रजेश देश ह्वै गयो कलेश बिन
ब्वै गयो स्वराज बीज सुख सरसात है ।।
तेज तप सिद्ध रूप जग में प्रसिद्ध यश
बुद्धि बल सोच अंग्रेज थहरात हैं ।
जाकी समता के काहू थल मैं न ताके
आज ताके परताप के पताके फहरात हैं ।।८।।

घोर कूटनीति सों नरिन्दन को कूटने में
हिन्द धन लूटने में ब्रिटिस प्रवीन हैं ।
बंधक में शासन कठोर के बँधो है मुल्क
तापै रोज रोज होतो हुकुम नवीन है ।।

जंबू दीप वासिन के बंद मुख देख्यो गाँधी
फंद में फँसो है देश मंद है मलीन है ।
संपति विहीन है पराक्रम से हीन है
यही से पराधीन है दुखी है अति दीन है ॥९॥

बिन बसन करि बिन असन प्रानिन कसन तैं अति पीटहीं ।
प्रज्वलित बालू जेठ की गोरंड तहाँ घसीटहीं ॥
रंगीन असि जंगीन से संगीन से संहारहीं ।
अति दीन प्रजा हँसीन तिनही मसीनगन से मारहीं ॥१०॥

पंजाब की नारी नरन सों जेल सारी भरि गईं ।
वनिता हजारन सहित बारन बिन अहारन मरि गईं ॥
पंजाब को सुनि घोर अत्याचार हत्या करन में ।
इकबारगी भभकी अचानक आगि भारत नरन में ॥११॥

भारत के वासिन को आरत विचारि महा
अंगन तैं आग के अंगारे झरने लगे ।
व्याकुल हैं बापू लै सहायक अनेक साथ
भाषन तैं लोगन मैं जोस भरने लगे ॥
हिन्दु औ मुसलमान एकमत है कै
बलिदान हेतु प्रानपन जी मैं धरने लगे ।
युद्ध हेतु सेना अंगरेजी सस्त्र धारिन सों
सेना बिन सस्त्र की तैयार करने लगे ॥१२॥

दक्षिण मैं मोरचा पटैल सरदार को है
सौकत अली के शूर पश्चिम लखात हैं ।
ऊधम मचाय रहे उत्तर में राज इंद्र
पूरब में तिलक सुभास मंडरात हैं ॥
मध्यप्रांत मोतीलाल मालवी जवाहिर के
कांग्रेसी झुंडन के झंडा फहरात हैं ।
गाँधी काम देखत न शीत घाम देखत
जहाँ पै काम देखत तहाँ पै दौरि जात हैं ॥१३॥

झंडा लिए हाथ मैं तिरंगा कर्मचंद गाँधी
भारत मैं घोर घमसान करने लगे ।
बडे बडे नेता हैं तयार तिन्हैं धैर्य दै दे
चारों ओर भाषन के सोर भरने लगे ॥
हिन्द के निवासिन में आगि सी भभकि उठी
दासता के आग के अंगारे झरने लगे ।
कांग्रेस प्रताप की प्रचंड ज्वाल जागने से
गौरमिंट दल के गौरंड जरने लगे ॥१४॥

बंद दुकानै बजारन में भईं होय हजारन की चहै हानी ।
त्यागि वकालत दीन्हें वकील अदालत जात नहीं प्रन ठानी ॥
विद्यारथी नहीं विद्या पढ़ैं तजि के इस्कूल करैं मनमानी ।
नौकर जे अंग्रेजन के दिए नौकरी छोड़ि सहस्त्रन प्रानी ॥१५॥

लाय दुकान तैं फूँकै बजाज नए पट थान जे कीमत बेशी ।
अंगन में पहिरै लगे खद्दर चद्दर काति कै सूत स्वदेशी ॥
मानत ना अनुशासन साह को युद्ध उमाह भरे जन देशी ।
मारहु तैं मुख मोरत हैं नहीं तोरत फोरत माल विदेशी ॥१६॥

पास में पटैल के उपद्रवी अनेक वीर
वैस ही जवाहिर के योधा मडरात हैं ।
जाय के बाजार मैं विदेशी माल रोकत हैं
देशी दास गोरन के पास तैं भजात हैं ॥
मानत न शासन दुशासन से वैरिन को
त्रास न पुलिस की यदपि मार खात हैं ।
लाखन गये हैं जेल लाखन तयार होत
लाखन के झुंड अभिलाखन सौं जात हैं ॥१७॥

बेसुमार सुकुमार मार की मानहु वामा ।
सहैं पुलिस की मार मार की यदपि न सामा ॥
आंदोलन कहुँ करैं कहूँ अनसन व्रत ठानैं ।
बिन हथ्यार हरौल हौल मन हुकुम न मानैं ॥१८॥

काल व्यालिका मनहु कालिका सी जब कोपैं ।
लिये तिरंगा धुजा भुजा के बल रन रोपैं ॥
संकट सहें कठोर घोर बैरि न मद हरतीं ।
यद्यपि अबला नाम काम सबला को करतीं ॥१९

अत्याचार अनाचार देखि अँगरेजन को
भारत के धीर वीर वनिता सम्हरतीं ।
युद्ध उत्साह अस्व तापर सवार ह्वै कै
साहस की कठिन कृपान पानि धरतीं ॥
कहत ब्रजेश सत्याग्रह को कवच कसि
कहा कूर गोरे कालहू को नहीं डरतीं ।
एकै वीर लक्षिमी प्रगट भई झाँसी माहिं
आज वीर लक्षिमी हजारों देखि परतीं ॥२

चारों और चंडिका प्रचंडिका सी दौरती हैं
पौरती हैं मानौं रनसिंधु के हिलोर ते ।
ठानतीं उपद्रव निदेश नहीं मानती हैं
यद्दपि गौरंड दंड देत जोर सोर ते ॥
लाय दारागार तैं बाजार तैं पुलिस पापी
जाय कारागार मैं पकरि झक झोरते ।
केती वीर नारिन को बंद करि लारिन मैं
जंगल की झारिन में खारिन मैं छोरते ॥२

घहरैं न प्रसन्नता के घन क्यों फहरैं न प्रताप पताके
जैं न क्यों अंगरेज अतेज ह्वै लाजैं न क्यों खल कूर स
न क्यौं विजै मोहन गाँधी लगावैं न क्यों सुख साखि
करवाल कराल पटैल ओ ढाल जवाहिर लाल हैं जाके

त काहे न होय स्वतंत्र औ काहे न भार मिटैं वसुधा
न पूरैं मनोरथ देश के काहे न दूरै कलेश प्रजा के
न गाँधी प्रभावित होयँ पराक्रम पारथ की समता के
करवाल कराल पटैल औ ढाल जवाहिर लाल हैं जाके

लाठ गवर्नर आदि पठायो निमंत्रन आदर के युत न्यारे ।
गाँधी जवाहिर लाल पटैल प्रसन्नता सौं देहली पग धारे ।।
मोहन को दरबार में लाठ दियो अधिकार स्वदेश को सारे ।
वंदन के अभिनंदन हिन्द को लंदन आप सबंधु सिधारे ।।२४।।

नेजन की न चली महिमा अँगरेजन को कियो सिंधु के पार है ।
कीन्हो सधर्म अधर्मिन को करि छूत अछूतन को निरधार है ।।
साहस के बल संकट झेलि हरे महाभारत भूमि को भार है ।
वेद पुरानन में दश हैं यह ग्यारहौं मोहन को अवतार है ।।२५।।



ग्रंथकार के संबंध में

डॉ कृष्णचन्द्र वर्मा : जन्म ३१ अगस्त १९२९, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

शिक्षा · अग्रवाल विद्यालय के पी स्कूल, के पी कॉलेज और यूनिवर्सिटी-इलाहाबाद म १९३६ से १९५० तक। १९५० एम ए,हिन्दी, प्रथम श्रेणी विशेषतया योग्यता सहित। १९६३ पी-एच डी -'विक्रम विश्व विद्यालय' उज्जैन से।

म.प्र शासन सेवा १९५० से १९९० तक रीवा, महू, रायपुर, जबलपुर, भोपाल, ग्वालियर, गुना, मुरार, नीमच, मुरैना। ९ वर्षो तक व्याख्याता, ५ वर्षो तक असिस्टेंट प्रोफेसर, २६ वर्षो तक प्रोफेसर, रीतिकालीन साहित्य के प्रसिद्ध मर्मज्ञ।

मूल रुचि : अध्ययन, अध्यापन, लेखन।

प्रकाशित कृतियाँ

१	अयोध्याकाण्ड की भूमिका	१९५१
२	उद्धव-शतक मीमांसा	१९५२
३.	विन्ध्य के आधुनिक कवि	१९५४
४.	आचार्य कवि केशवदास	१९५७
५.	श्री चन्द्रावली नाटिका	१९६१
६	रीतियुगीन काव्य	१९६५
७	घनआनंद	१९६६
८.	रीतिस्वच्छन्द काव्यधारा	१९६७
९.	घनआनंद चयनिका	१९६८
१०	कविश्री मिलिन्द	१९७०
११	छायावादोत्तर काव्य	१९७१
१२.	छाया वादी काव्य	१९७२
१३.	महाकवि देव	१९७३
१४	निबंधमणि	१९७४
१५	अन्धेर नगरी	१९८६
१६.	मध्यकालीन काव्य	१९८७
१७	श्यामनारायण विजयवर्गीय और उनका साहित्य	१९९७
१८	रसखान का काव्य	१९९९
१९	कविवर ठाकुर	१९९९
२०	आचार्य डॉ रामशंकर शुक्ल 'रसाल' (जन्म-शताब्दी स्मृति ग्रंथ)	२०००
२१.	महाकवि ब्रजेश	२०००

अप्रकाशित ग्रंथ : तुलसी, केशव, आलम, बोधा, द्विजदेव तथा मध्यकालीन काव्य और आधुनिक साहित्य पर समीक्षाएँ तथा लगभग ४०० साहित्यिक निबंध।

ग्रंथकार पर प्रकाशित ग्रंथ - 'समीक्षक आचार्य - डॉ कृष्णचन्द्र वर्मा' भावना प्रकाशन, दिल्ली ९१